पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या......... ..   आगत संख्या...........

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित हैं। इस तिथि सहित ३०वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

॥ ओ३म् ॥

हवन यज्ञ प्रदीपिका

अर्थात्

हवन यज्ञ के विषय में अपनी किस्म की सब से प्रथम तथा अनूठी पुस्तक।

लेखक व प्रकाशक—

मा० नत्थनलाल आर्य,

(पैंश्नर)

मिलने का पता—

वैदिक पुस्तकालय

आर्य समाज बिरलालाईस, देहली

प्रथमवार २०००

मूल्य ॥=)

मुद्रक शुद्धि प्रेस बिरलालाईन्स देहली

विषय-सूची

❀ ओ३म् ❀

भूमिका

यज्ञ हवन से हो सुगन्धित सारा भारत वर्ष देश।
वायु जल सुखदाई होवें, जाये मिट सारे ही क्लेश ॥

(१)–यो भूतं च भव्यं सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
सर्वस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

अर्थ—जो भूत कालीन और भविष्य कालीन सब जगत का अधिष्ठाता है और जिसको अपनी सत्ता ही केवल सदा रहती है उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है ।

(२) देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां, देवानां राति
रभिनो निवर्तताम् । देवानां सख्यमुपसेदिमावयं,
देवान आयुः प्रतिरन्तु जीव से ॥ऋ० १।८९।२

अर्थ—ज्ञानियों की कल्याणकारी बुद्धि सीधी हमारे पास आजावे । श्रेष्ठ विद्वानों का ज्ञान हमारे पास आजावे, हम सब श्रेष्ठ विद्वानों के साथ मित्रता किया कर, तथा दीर्घ जीवन के लिए देवता हमें आयु प्रदान करें ।

(३)—वर्च आधेहि मे तन्वा ३सह ओजो वयो बलम् ।
इन्द्रियायत्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शत
शारदाय । अथर्व० १९ । ३७ । २

अर्थ—हे अग्ने परमात्मन: ! मेरे शरीर में तेज, सहन शक्ति, पराक्रम, पौरुष, बल धारण कर इन्द्रिय, कर्म, वीर्य तथा सौ वर्ष की आयु के लिये मैं स्वीकार करता हूं ।

नित्य कर्म—'सन्ध्या प्रदीपिका' की भूमिका में हम वर्णन कर चुके हैं कि, मनु के आदेशानुसार पांच प्रकार के कर्म, जो पंच महायज्ञ के नाम से प्रसिद्ध हैं, प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन करने चाहियें। अर्थात:—(१) ब्रह्म यज्ञ, (२) देव यज्ञ (३) पितृ यज्ञ (४) अतिथियज्ञ (५) वलीवैश्व देवयज्ञ, यह मनुष्य मात्र के कर्तव्य कर्म हैं, जिनके बिना मनुष्य, मनुष्य कहलाने के योग्य नहीं हो सकता। इनमें से "ब्रह्म यज्ञ" की व्याख्या--'सन्ध्या प्रदीपिका' नाम की पुस्तक में कर चुके हैं, यहां हम "देव यज्ञ" नाम के दूसरे नित्य कर्म की विस्तृत व्याख्या करना चाहते हैं, परमात्मा हमारे इस संकल्प को पूर्ण करें।

'देवयज्ञ' के वास्तविक भावों को समझने के लिये हमें "देव" और "यज्ञ" इन दोनों शब्दों के यथार्थ भावों को ठीक २ समझने की आवश्यकता है।

देव

देव शब्द की निरुक्ति—देव शब्द के सम्बन्ध में निरुक्तकार लिखते हैं:—

देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा । द्यु स्थानो भवतीति वा ॥ नि० दै० कां० अ० ७ सं १५

दान देने, प्रकाशित करने, चमकाने (सत उपदेश करने) और द्यौस्थानी होने से देव कहाते हैं।

अतः जो मनुष्य (दानाद्वा) अपनी चीजें अन्न, धन, वस्त्रादि दूसरों को दान देते हैं वह देव हैं। (दीपनाद्वा) सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रादि पदार्थ स्वयं प्रकाशित होने तथा पृथ्वी आदि पदार्थों को प्रकाशित करने और द्यौ स्थानी होने से देव हैं। ज्ञानेन्द्रियां भी देव हैं, क्योंकि इनसे अर्थों का प्रकाश होता है। विद्वा "ंसो वै देवा" (शतपथ) विद्वान मनुष्य भी देव है। "मातृ देवो भव, पितृ देवोभव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवोभव" माता, पिता, आचार्य और अतिथि भी पालन-पोषण तथा सत्योपदेशादि के कारण देव कहाते हैं। भिन्न भिन्न पदार्थ भी, जैसे वृक्ष, (फलादि देने से) पहाड़, (पत्थरादि अनेक पदार्थ देने से) नदी, (जल देने से) समुद्र, (मोती मूंगा आदि देने से) देव कहाते हैं। सब देवों का परमदेव परमात्मा है क्योंकि संसार के समस्त पदार्थ उसी के दिये हुए और तमाम देवों को भी देवत्व उसी से प्राप्त हुआ है। कठोपनिषद में लिखा है:—

तमेव भान्तमनु भाति सर्वं, तस्य भासा सर्वमिदं विभाति। कठ० व० ५ मं० १५।

अर्थ—उसी के प्रकाश से सब कुछ प्रकाशता है, उसके ही प्रकाश से सब कुछ प्रकाशित होता है। तात्पर्य यह है कि संसार

के सारे प्रकाशित पदार्थ परमात्मा के प्रकाश से ही प्रकाशित हैं। इसी लिये वेद ने उसे "देवं देवत्रा" देवों का देव वा महादेव और "उत्तमंज्योति" सर्व उत्तम प्रकाश आदि शब्दों से वर्णन किया है, अतः मुख्य देव परमात्मा ही है। शेष पदार्थों ने तो उसी से देवत्व प्राप्त किया है।

व्यवहार के देवता—संसार के सारे ही पदार्थ किसी न किसी अर्थ में देव कहला सकते हैं। कारण, कि 'देव' का अर्थ दिव्य, गुण, कर्म, स्वभाव युक्त पदार्थ हैं अतः जितने २ जिस जिस पदार्थमें दिव्य गुण हैं उतना उतना उसमें देव-पन है। उन्हीं गुणों के कारण वह पदार्थ व्यवहार में आते हैं और वही गुण उन पदार्थों को प्रकाशित करते हैं। यजुर्वेद में लिखा है:—

अग्निर्देवता, वातो देवता, सूर्यो देवता, चन्द्रमा देवता, वसवो देवता, रुद्रा देवतादित्या देवता, मरुतो देवता, विश्वे देवा देवता, बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता, वरुणो देवता ॥ यजु० अ० १४ ।२०

अर्थ—अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, वसु, रुद्र, आदित्य, मरुत, बृहस्पति, इन्द्र, वरुण आदि (विश्वे देवा) संसार के सब पदार्थ ही अपने अपने दिव्य गुण, कर्म, स्वभाव के कारण देवता हैं। यह सब व्यवहार के देवता हैं।

यज्ञ के ३३ देवता—ऋग्वेद में यज्ञ के ३३ देवताओं का वर्णन है।

ये त्रिंशति त्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन् ।
विदन्नहद्वितासतत् । ऋ० ८-२८-१

अर्थ—जो तैंतीस देवता यज्ञ में काम आते हैं वह यज्ञ में अपना अपना भाग लेकर हमें द्विगुणा फल दें ।

यहां यज्ञ के तैंतीस देवताओं का वर्णन है वह तैंतीस देवता निम्न प्रकार हैं ।

(क) ८वसु ❀:—अग्नि, वायु, पृथिवी, अन्तरिक्ष, (आकाश,) आदित्य (सूर्य वा सूर्य की किरणें) द्यौ लोक, चन्द्रमा,नक्षत्र ।

(ख) ११ रुद्रः (रुलाने वाले)--१० प्राण (प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंज्य) और ग्यारहवां जीवात्मा । क्योंकि जब यह शरीर को त्यागते हैं तो सब को रुलाते हैं ।

(ग) १२ आदित्यः—बारह मास क्योंकि यह (आदन) सब की आयु को लेते हैं ।

(घ) १इन्द्रः—बिजली, क्योंकि वह उत्तम ।ऐश्वर्य की विद्या का मुख्य हेतु है अर्थात् राजा ।

(ङ) १ प्रजापति :—यज्ञ, क्योंकि यज्ञ से प्रजा .का पालन होता है अर्थात् गृहस्थी ।

यह कुल ३३ देवता हुए। इन सब का प्रकाशक होने से परमात्मा चौंतीसवां उपास्यदेव है। इन सब की व्याख्या शतपथ ब्राह्मण में की गई है। संसार का कोई भी पदार्थ इन से बाहर नहीं रह कसता ।

नोट—❀इनका वसु नाम इस कारण से है कि सब पदार्थ इन ही में वास करते हैं ।

देव शब्द के धात्वार्थ—अब देव शब्द के धात्वार्थ देखने चाहियें । "देव" दिव, धातुसे बना है जिसके अर्थ निम्न लिखित हैं:—

दिवु क्रीड़ा विजिगीषा व्यवहार द्यु तिस्तुति मोद, मदस्वप्न कान्तिगतिषु ।

(१) क्रीड़ा(खेल):—संसार एक क्रीडा स्थल है। यहां प्रत्येक पदार्थ क्रीड़ा कर रहा है। प्रकृति अनेक रूप धारण करके हमारे सामने नाचती है । समस्त जीवात्मा भी अनेक रूप धारण करके अपना २ पार्ट खेलते हैं। परमात्मा इसका नायक है, वह सब से बड़ा खिलाड़ी है उसी के इशारे से सारा जगत नाचता है। यह क्रीड़ा का अर्थ संसार के प्रत्येक पदार्थ पर घटता है इस लिये प्रत्येक पदार्थ ही किसी न किसी अर्थ में देव हैं।

(२) विजिगीषा:—शत्रुओं पर विजय की इच्छा—संसार एक युद्ध स्थल है । यहां रात दिन जीवन के लिये संग्राम हो रहा है। प्रत्येक पदार्थ यहां अपने अस्तित्व--को स्थिर रखने के निमित्त अपने उन शत्रुओं से, जो उसका अस्तित्व मिटाना चाहते हैं, संग्राम कर रहा है । जो अधिक गुण और सामर्थ्य रखता है, वह विजय प्राप्त करता है और जीवित रहता है। दूसरे पराजित होकर नष्ट हो जाते हैं, अतः संसार के अन्दर जो भी पदार्थ विद्यमान हैं, वह विजय की इच्छा रखने के कारण देव हैं।

(३) व्यवहार [लेनदेन]:—संसार में लेनदे-न लगा हुआ है। प्रत्येक पदार्थ किसी से कुछ लेता है और किसी को कुछ देता भी है। इस लेन-देन के बिना संसार में गुजारा नहीं अतः प्रत्येक पदार्थ जो इस प्रकार व्यवहार कर रहा है, या यों कहो कि व्यवहार में जो चतुर हैं, वह देव हैं।

(४) द्युतिः—पकाश करना, तेजस्वत्व प्रत्येक पदार्थ जिसमें प्रकाश और तेज पाया जाता है, वह देव है।

(५) स्तुतिः—प्रशंसा-जो पदार्थ प्रशंसनीय गुण, कर्म, स्वभाव रखते हैं वह देव हैं। प्रत्येक पदार्थ में कोई न कोई ऐसा गुण होता है जिसके कारण उसकी प्रशंसा की जाती है। इस लिये संसार का प्रत्येक पदार्थ अपने उस गुण के कारण देव है।

(६)मोदः—प्रसन्नता-आनन्द-जो सदा प्रसन्न रहता है और दूसरों को आनन्द देता है वह देव है।

(७)मदः—घमंड-आत्म- सम्मान (Self respect) मस्ती—संसार का प्रत्येक पदार्थ अपने मद में मस्त हुआ २ कार्य कर रहा है।

(८) स्वप्नः—सोना-रात्री और प्रलय के समय सब सो जाते हैं।

(९) कान्ति+:—शोभा और कामना-सुन्दर और

+ कान्ति :—beauty, desire, (wilsons Sanskrit, English Diction,ary)

कामना करने योग्य पदार्थ अथवा उत्तम गुण, कर्म स्वभाव की कामना करने वाले देव कहाते हैं।

(१०) गतिः—(ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति) ज्ञान गति और प्राप्ति-ज्ञानी, गतिमान वा दूसरों को गति देने वाले, और प्राप्ति के योग्य पदार्थ देव हैं।

इन अर्थों पर विचार करने से पता चल सकता है कि देव बनने के लिये मनुष्य को क्या २ गुण प्राप्त करने चाहिये। अथवा संसार का कौन पदार्थ अपने किस गुण के कारण देव कहला सकता है। किसी पदार्थ में उपरि लिखित गुणों में से जितने गुण पाये जाते हों उतने ही अंशों में वह पदार्थ देव समझा जायेगा, पूर्ण देव केवल परमात्मा है।

देव वाचक अन्य शब्दः—देवों का देवत्व अच्छी तरह समझाने के लिये हम यहां देव वाचक कुछ अन्य शब्दों का भी उल्लेख करते हैं:—

(१) विवुधः—विशेष ज्ञान सम्पन्न।

(२) सुमनसः—उत्तम मन वाले।

(३) ऋभवः—कारीगर।

(४) लेखाः—उत्तम लेखक।

(५)अ-स्वप्नाः—न सोने वाले। जिनका आत्मा सदा जागृत रहता है। जो सुस्त नहीं होता।

(६) अमृतान्धसः—मरा हुआ अन्न (मांसादि) न खाने वाले, आरोग्यदायक अन्न भक्षण करने वाले।

(७) ऋतुभुजः—उत्तम कर्म करके भोजन करने वाले, स्वयं कमा के खाने वाले।

(८) वृन्दारिका:—वृन्द अर्थात् समूहकी शक्ति रखने वाले।

(९) आज्यदाः—घी पीने वाले।

(१०) हविर्भुजः—हविष्यान्न खाने वाले इत्यादि।

मन्त्रों के देवताः—वेद मन्त्रों में जिस २ विषय का वर्णन होता है वह विषय उस २ मन्त्र का देवता कहलाता है. क्योंकि उसके जानने से मन्त्र के अर्थों पर प्रकाश पड़ता है।

यज्ञ

यज्ञ शब्द की मीमांसा धात्वार्थः--अब यज्ञ शब्द के अर्थों पर विचार करना चाहिये। यह शब्द भी देव शब्द की तरह बड़ा विचित्र है और इस के अर्थ और भाव भी बड़े गूढ़ हैं। यह "यज"※ धातु से बना है जिसके अर्थ देव पूजा, संगति करण और दान हैं देव शब्द की व्याख्या पीछे कर ही चुके हैं।

पूजा नाम सत्कारः—उन सब का सत्कार करना और उनसे यथा योग्य उपकार लेना "देव पूजा" है। अर्थात् ईश्वर की भक्ति करना, विद्वानों का सत्कार करना। और दिव्य गुण युक्त जड़ वस्तुओं, जैसे अग्नि, वायु आदि से यथा योग्य काम लेना देव पूजा है। "संगति करण" का अर्थ मिलना

※ यज—देव पूजा, संगति करण दाने पृ धातु पाठ

मिलाना वा संघ बनाना है अर्थात् धर्मात्मा विद्वानों से मिलना जुलना और उनके सत्संग से लाभ उठाना, ईश्वर का ध्यान करना और जड़ पदार्थों को मिला जुला कर उनसे काम लेना सब संगति करण में शामिल हैं। "दान" किसी वस्तु का देना वा दूसरों के उपयोग के लिये उपस्थित करना जैसे भूखे को रोटी देना, नंगों को वस्त्र देना, मूर्ख को विद्या पढ़ाना यह सब दान है। पर दान सदा सुपात्र को ही देना उचित है कुपात्र को नहीं। मनुजी कहते हैं:—

यथा चाज्ञेऽफलं दानं तथाविप्रो नृचोफलः।

मनु०२।१५८॥

अर्थ—जैसे अज्ञानी को दान देना निष्फल है वैसे ही वेद रहित ब्राह्मण निष्फल है।

यज्ञ का मुख्यार्थ संगति करण ही है:—थोड़ा विचार करने से विदित होगा कि 'यज्ञ' शब्द के ऊपर वाले तीन अर्थों में से बीच का अर्थ अर्थात् संगति करण ही मुख्य है। शेष दो बातें केवल उसी की निमित्त मात्र हैं जब हम कोई संघ बनाते हैं तो उस संघ में एक दूसरे के साथ यथायोग्य बर्ताव करना उचित ही है अर्थात् संघ में जो (देव) विद्वान और गुणवान हैं उनकी पूजा आदर सत्कार सब मनुष्यों को करना उचित ही है। तभी हम उनके ज्ञान तथा गुणों से लाभ उठा सकते हैं। उनका भी कर्तव्य है कि अपने गुणों से दूसरों को लाभ पहुंचा सकें। जो बड़ा ज्ञानी

है, वह ज्ञान दान देकर संघ को लाभ पहुंचाये । दूसरा धनी है, वह धन से संघ की सहायता करे। तीसरा अपने बाहु बल से संघ की रक्षा करता है । चौथा अपने शरीर से ही दूसरों की सेवा करता है । यही इन सब का दान है अर्थात पूजा और दान दोनों संगति करण के अति आवश्यक अंग हैं जिनके बिना संगति करण असम्भव है।

यज्ञ पुरुष के तीन अङ्गः——अब स्पष्ट होगया होगा कि प्रत्येक यज्ञ-संगठन के लिये तीन बातों का होना आवश्यक है, देवों--गुणवानों की पूजा-सत्कार करना, बराबर वालों के साथ संगति करण--प्रेम पूर्वक मिलजुल* कर रहना और छोटों पर अनुग्रह करना--दान देना। यही यज्ञ पुरुष के तीन अंग हैं। [१]देव पूजा यज्ञ का सिर* है । [२] संगति

---

*एकं सह करवाव, समानं करवाव । [शतपथ]

अर्थ—हम सब मिलकर कार्य करेंगे तथा समानता का बर्ताव करेंगे।

***श्रीर्वै शिरस्तस्माद्यो**ऽ**र्द्धस्य श्रेष्ठों भवत्यसावमुष्यर्द्धस्य शिर इत्याहुः । (शतपथ)**

अर्थ—सिर ही श्रेष्ठता है। इसलिये लोकों में जो सबसे श्रेष्ठ होता है, उसको सब कहते हैं कि वह उस जाति का सिर है

शिरो वै यज्ञस्यातिथ्यं (शतपथ)

आतिथ्य ही यज्ञ का सिर है।

करण धड (Main Body) और [३] दान यज्ञ पुरुष की टांगें हैं। यदि बड़ों-विद्वानों-लीडरों-श्रेष्ठ पुरुषों की पूजा न की जायगी और उन की आज्ञा का पालन न किया जायेगा तो यज्ञ का सिर खंडित हो जायेगा। यदि बराबर वालों का आपस में मेल मिलाप और परस्पर सहयोग न होगा तो यज्ञ पुरुष का धड़ टूट जायेगा और यदि अपने से छोटों, धन हीनों की सहायता न की जायेगी तो यज्ञ पुरुष का नीचे का अङ्ग भंग हो जायेगा और संघ खड़ा न रह सकेगा।

यहां यह जान लेना भी जरूरी है, कि "देवपूजा" शब्द हमें यह बता रहा है कि मनुष्य अपने दिव्य गुणों के कारण ही पूजा जाता है तथा सत्कार के योग्य बनता है। फलतः गुण हीन व्यक्तियों की पूजा सर्वथा असंगत है। अतः जब किसी यज्ञ-संघ-जाति में गुणहीन मनुष्यों का सत्कार भी गुणवानों--विद्वानों के समान होने लगता है, तथा गुणवानों की जगह गुण हीन मनुष्य ले लेते हैं तो मानो यज्ञ का सिर भ्रष्ट हो जाता है इस से उस उद्देश्य को, जिस के लिये संघ बनाया जाता है, हानि पहुंचती है। इसी लिये मनु महाराज कहते है :—

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं व्यथा॥

अर्थ—जहां गुणियों का असत्कार और गुण हीनों का सत्कार होता है वहां दुर्भिक्ष पड़ता है। महामारी फैलती और

बताएं आती हैं। इसी प्रकार से शतपथ ब्राह्मण में आया है :—

ईडाम है देवां ईडेन्यान्न मस्याम नमास्यान् यज्ञाम यज्ञियानिति

(शतपथ)

अर्थात हम स्तुति करने योग्य देवों की ही स्तुति करेंगे, नमन करने योग्य जो होंगे उनको ही नमन करेंगे तथा पूजा करने योग्य जो होगें उन ही की पूजा करेंगे।

व्यक्तिगत यज्ञ—ऊपर हमने यज्ञ का मुख्य अर्थ संगठन किया है अर्थात बहुत मनुष्यों का किसी विशेष मतलब के लिये संगठित होना किन्तु यज्ञ का एक और भाव भी हो सकता है। वह भाव व्यक्ति गत है, इस लिये उसे हम "व्यक्ति गत यज्ञ' के नाम से पुकारेंगे।

इस व्यक्तिगत यज्ञ में दान--परोपकार--स्वार्थ त्याग ही मुख्य है यजुर्वेद में इस भाव को "त्यक्तेन भुंजिथा" इन सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है।

अर्थात जो कुछ तुम्हारे पास है.उसे पहिले दूसरों के लिये त्याग करो जो शेष बचे उसे स्वयं भोगो इसी का नाम यज्ञशे है। (मा गृधः) सारे का सारा स्वयं ही भोगने का लालच न करो अन्यथा तुम पाप के भागी बनोगे "पितृ यज्ञ" 'अतिथि यज्ञ' और 'भूत यज्ञ' का भी यही तात्पर्य है अपने बड़े बूढों को आये

+ यज्ञ शिष्ठा शिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्विषैः गी० ३/१३ यज्ञ से शेष बचे हुए अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापों से छूट जाते हैं।

गयों को तथा पशु पक्षियों को यहां तक कि कीड़े मकोड़ों तक को भी पहिले खिला कर फिर शेष स्वयं खाओ।

इस सम्बन्ध में वेद का उपदेश देखने योग्य है :—

स इद्भोजो यो गृहवे ददात्यन्न कामाय चरते कृशाय। अरमस्मै भवति याम हूता उतापरीषु कृणुते सखायम्॥

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य। नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादि॥ ऋ० १०। ११७। ३, ६

अर्थ (सः इत् भोज) वही सच्चा भोजन करता है (यः) जो (कृशाय अन्न कामाय गृहवे चरति) भूख से कृश-दुर्बल हुए २ तथा अन्न की कामना में घर २ फिरने वाले याचकों को (ददाति) अन्न देता है (अस्मै) उसी दाता को (याम हूतौ) योग्य समय पर दान देने के लिये (अरं भवति) पर्याप्त अन्न होता है। (उत) और वह (अ-परीषु) कठिन अवसर के लिये (सखायं कृणुते) मित्र बनाता है॥ (सत्यं-ब्रीवीमि) मैं सत्य कहता हूं कि जो (अप्रचेत) दुष्ट बुद्धिवाला मनुष्य (-अर्य-मणं पुष्यति नो सखायं) न श्रेष्ठ मन वालों का पोषण करता है और न अपने मित्रों को ही देता है, वह (केवलादि) अकेला खाने वाला (केवल-अघः-भवति) केवल पाप रूप बनता है। वह (अन्नं मौघं विंदते)

अन्न को व्यर्थ ही प्राप्त करता है क्योंकि (स इत्) वह अन्न निश्चय से (तस्य वधः) उसका नाश कर देता है । वेद इससे भी आगे बढ़ता है:—

आयुर्यज्ञेन कल्पतां स्वाहा । प्राणो यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा । ऽपानो यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा । व्यानो यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा । उदानो यज्ञेनकल्पताम् स्वाहा । चक्षुर्यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा ।वाग्यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा ।मनो यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा । आत्मा यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा । यजु० अ० २२ । ३३।

अर्थात् अपने आयु, पंच प्राण, इन्द्रियां मन और आत्मा आदि सब पदार्थों का यज्ञ में समर्पण कर दो (स्वा-आ-हा) अपना जो कुछ भी है वह सब दूसरों के लिये अर्पण कर दो ।

फलतः इस व्यक्ति गत यज्ञ का मतलब यह है कि अपना सब कुछ दूसरों के लिये हो ।

हम दूसरों को सुख पहुंचा कर ही सुखी हों । हमारा जीवन ही परोपकार मय बन जावे । यह कितना उत्तम भाव है। यह भाव यज्ञ शब्द के तीसरे अर्थ 'दान' से निकलता है इस लिए यही अर्थ यहां मुख्य है किन्तु जिस वस्तु का हम दान करें , उसे पहिले प्राप्त करना तथा उसका संवर्धन करना--बढ़ाना भी तो आवश्यक है अन्यथा दान काहे का होगा । किसी वस्तु का प्राप्त करना ही मानो उसकी पूजा है और उसका संवर्धन-

बढ़ना, इकठ्ठा करना ही संगति करण है। धन का पुजारी ही धनी बन सकता है जिसके हृदय में धन का सत्कार ही नहीं, जो धन के महत्व को जानता ही नहीं वह कभी धनी हो नहीं सकता। इसी प्रकार से विद्या का पुजारी विद्वान और बल का पुजारी बलवान बन सकता है, अन्य नहीं। किन्तु यह प्राप्ति और संवर्धन त्याग परोपकार के लिये है अन्यथा वह यज्ञ न कहला कर स्वार्थ कहलायेगा और ऐसा स्वार्थ वेद की भाषा में "अघ" अर्थात पाप है।

चार वर्णों के लिये चार यज्ञ—चार वर्णों के लिए चार प्रकार के यज्ञ मुख्य हैं। ब्राह्मण का काम मुख्यतया पढ़ना है यह ब्राह्मण का "ज्ञान यज्ञ" है।

अर्थात् ब्राह्मण पहिले ज्ञान का पुजारी बन के ज्ञान प्राप्त करता है। फिर मनन द्वारा उस ज्ञान को बढ़ाता है तत्पश्चात वह प्राप्त ज्ञान दूसरों को दानकर देता है। इसी प्रकार से क्षत्रियों के लिये 'क्षात्र यज्ञ' है, वैश्य के लिए द्रव्य यज्ञ और शूद्र के लिये 'शरीर यज्ञ' है। यह चार वर्णों के लिए चार मुख्य यज्ञ है, जो वास्तव में उनके कर्तव्यों को ही प्रगट करते हैं। अतः प्रत्येक मनुष्य निष्काम भाव से अपना कर्तव्य पालन करता हुआ यज्ञके फल का भागी होता है। गीता में लिखा है, त्वं नियतम् कर्म कुरु÷। तू नियत कर्म कर क्योंकि 'असक्तो ह्याचरत्कर्म परमाप्नोति पुरुषः' गी० ३।१९। अनासक्त पुरुष कर्तव्य कर्मों को

÷ ता३८

करता हुआ परमपद (मुक्ति) को प्राप्त होता है। और

"स्व धर्म हित्वा पापम् वाप्स्यसि" गी० २। ३३

यदि तू अपने कर्तव्य कर्मों को छोड़ देगा तो पाप को प्राप्त होगा। अर्थात् पापी बनेगा।

संसार का प्रत्येक पदार्थ यज्ञ रूप है—"सहयज्ञाः प्रजाः सृष्टवा पुरो वाच प्रजापतिः" गीता० ३। १० प्रजा पति—ईश्वर ने कल्प के आदि में प्रजाको यज्ञ सहित उत्पन्न किया। इस का तात्पर्य यह है कि यह संसार यज्ञ रूप उत्पन्न किया गया है, इस लिये इसमें प्रत्येक वस्तु यज्ञ रूप है। और इसके उत्पन्न करने वाला प्रजापति स्वयं भी यज्ञ रूप ही है। "ब्रह्मा हि यज्ञः" क्यों कि वह सब के साथ यथा योग्य वर्ताव करता है और ज्ञानियों को परम गति प्राप्त कराता है। यही उस की देव पूजा है इसी लिये वेद ने परमात्मा को (देव हितं) अर्थात् देवों का हितकारी कहा है। उसी ने सारे संसार को संगठित किया है और स्वयं भी सब के साथ मिल कर रहता है यही संगतिकरण है। और उसके दान के सम्बन्ध में तो अधिक कहने की आवश्यकता ही नहीं है। क्योंकि प्रत्येक पदार्थ उसी प्रभु का दिया हुआ है। इस प्रकार से 'यज' धातु के तीनों ही अर्थ परमात्मा पर घटते हैं। यह ब्रह्माण्ड यज्ञ है क्यों कि यह सूर्य, चन्द्र और ग्रहों ने मिलकर एक संगठन बनाया हुआ है। इनमें से ग्रह और उपग्रह (चन्द्रादि) मिल कर अपने से बड़े और दिव्य गुण युक्त सूर्य की परिक्रमा करते हैं। यही इन की देवपूजा है।

सब मिलकर एक विशेष लक्ष की पूर्ति के लिये अपनी २ जगह पर घूम रहे हैं। यह संगति करण है। सूर्य ग्रहों और उपग्रहों को ताप और प्रकाश देता है, यही इस यज्ञ में दान हो रहा है। संगठित मनुष्य समुदाय भी यज्ञ है। क्यों कि छोटे, बड़ों का सत्कार करते हैं, बराबर वाले प्रेम से मिल-जुल कर रहते हैं, और छोटों को सब मिल कर उन्नत करने के लिये विद्या, पुत्र और धनादि का दान देते हैं। मनुष्य शरीर भी यज्ञ है। क्यों कि यह आत्मा, मन, बुद्धि और इन्द्रियों आदि का संगठन है। और इस संगठन को यथा शक्ति अधिक समय तक बनाये रखना ही इसका उद्देश्य है। इसमें शरीर के सब अवयव मस्तिष्क की आज्ञा में चलते हैं, आपस में मिल जुल कर एक ही उद्देश्य के लिये काम करते हैं और यह काम पूर्ण स्वार्थ त्याग के साथ किया जाता है। जब भी कभी कोई भाग स्वार्थ में फंस जाता है, तभी यह यज्ञ विध्वंस होजाता है। जैसे, यदि जिह्वा स्वाद में फंस कर अधिक भोजन कर जाती है, तो शरीर अस्वस्थ हो जाता है। इत्यादि, इस प्रकार से संसार की प्रत्येक वस्तु ही यज्ञ रूप है, यजुर्वेद में लिखा है—

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो धर्मोसि विश्वधा असि। परमेण धाम्ना हꣳहस्व माह्वार्मी ते यज्ञ पति र्माह्वार्षीत ॥ यजु० १। २

अर्थ—(वसो) हे यज्ञ ! तू (पवित्रं असि) पवित्र है वा पवित्रता का हेतु है, (द्यौः असि) तू द्यौ लोक है, (पृथ्वी असि)

तू ही पृथ्वी लोक है।

(मातरिश्वन: धर्म: असि) तू वायु को शुद्ध करने वाला वा संचालन करने वाला है। (विश्वधा: असि) विश्व को धारण करने वाला है (परमेण धाम्ना) परमधाम से (हꣳह स्व) सुख का बढ़ाने वाला है। हे यज्ञ तू यजमान को (माह्वा) मत त्याग। और (यज्ञ पति:) यजमान भी (ते) तुझे कभी (माह्वार्षीत्) न त्यागे।

आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक यज्ञ—

गीता में अनेक प्रकारके यज्ञों का वर्णन है। पर वह सब तीन श्रेणियों में विभक्त हो सकते हैं, (१) आध्यात्मिक (२) आधिभौतिक (३) आधिदैविक वह सब कर्म जो अपनी उन्नति के लिये किए जाते हैं "आध्यात्मिक" कहाते हैं जैसे भोजन छादनादि से शरीर की रक्षा करना और व्यायाम द्वारा बल बढ़ाना आदि शरीर यज्ञ, धर्म कार्यों में कष्ट भोगना तप, यज्ञ, ईश्वर प्राप्ति के लिये योगसाधनादि क्रिया योगयज्ञ, ज्ञान प्राप्ति के लिये वेदों का स्वाध्याय करना, ज्ञान यज्ञ—स्वाध्याय यज्ञ वा ब्रह्म यज्ञ कहलाता है, यह सब आध्यात्मिक यज्ञ हैं। जो कर्म दूसरे जीवों की भलाई के लिये किये जाते हैं वह सब आधिभौतिक कहलाते हैं। जैसे पितृ यज्ञ, जिस में माता, पिता, आचार्य आदि पितरों की सेवा सुश्रूषा की जाती है। इसी का नाम श्राद्ध और तर्पण है। अतिथि यज्ञ, यह मनुष्य मात्र की भलाई के लिये किया जाता है, भूत यज्ञ इसमें जीव मात्र का उपकार करना

होता है। पशु शालायें भी इसी में सम्मिलित हैं। इसी प्र
से सब तरह के संगठन जो किसी विशेष उद्देश्य से बनाये ज
हैं यह सब आधिभौतिक यज्ञ हैं। आधिदैविक यज्ञों में सं
के समस्त जड़ पदार्थों की उन्नति के लिये कर्म करना तथा उन
उपयोग लेना होता है। अनेक प्रकार के यन्त्र बनाना, अ
औषधियों को मिलाजुला कर नवीन गुण उत्पन्न करना, अ
अग्नि होत्रादि सब इसी श्रेणी में सम्मिलित हैं।

यज्ञ और बलि—प्रगट है कि यज्ञ-संघ में प्रत्येक व्य
को कुछ न कुछ आत्म बलिदान वा स्वार्थ त्याग करना ही पड़
है। यह बलिदान ही यज्ञ की जान है क्योंकि इस के बिना य
जीवित ही नहीं रह सकता। बड़ों की आज्ञा पालन के लिये अप
इच्छाओं, अपने स्वार्थ और आत्माभिमान का श्रद्धा रूपी अ
से बलिदान करना पड़ता है। बराबर वालों के साथ सहयो
करने के लिये भी स्वार्थ त्याग की आवश्यकता है। जब
व्यक्ति मिलकर कोई निर्णय करते हैं तो वह निर्णय बहुधा
क्तियों की इच्छा वा स्वार्थ के विरुद्ध होता है तो भी उन्हें
स्वीकार ही करना पड़ता है अन्यथा उद्देश्य पूर्त्ति असम्भव
मानों व्यक्तियों को अपनी इच्छाओं को एकोद्देश्य की अग्नि
स्वाहा करना पड़ता है, यज्ञ का तीसरा अङ्ग दान तो स्वयं
बलिदान स्वरूप है। उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये यथा आवश्य
तन, मन और धन सब कुछ न्योछावर करना पड़ जाता है।

यज्ञ और हिंसा—बहुत से लोग बलि का अर्थ पशु हिं

समझते हैं और कहते हैं कि यज्ञ में बकरा, मेंढा, गाय और घोड़ा आदि पशुओं का वध कर के उन का मांस अग्नि में डाला जाता था। किन्तु, वास्तव में जो लोग ऐसा कहते हैं वह भ्रम में पड़े हुए हैं। वेद में पशु वध की कदापि आज्ञा नहीं है किन्तु स्पष्ट शब्दों में निषेध तो पाया जाता है। जैसे, (अश्वमा हिंसीः) अर्थात् घोड़े को मत मार (मा हिंसी, द्विपादंपशुम्) दो पांव वाले पशुओं को मत मार।

मा हिंसीः वाजिनम्। घोड़े को मत मार।

इमसूर्णायुं मा हिंसीः। इस ऊन के देने वाले भेड़ को मत मार,

यजु० १३। ४२,४७,४८,५०॥

मा हिंसीःपुरुषम्। यजु० १३। ३ मनुष्य को मत मार,

मा हिंसीःतन्वा प्रजाः। प्राणियों को शरीर-से मत मार

यजु० १२।३२

केवल इतना ही नहीं किन्तु वेद तो औषधियों को जड़ से उखाड़ने का भी निषेध करता है जैसेः —

औषध्यास्ते मूलं मा हिंसिषम्। यजु० १।२५

अर्थ—मैं औषधियों के मूल की हिंसा न करूं। यह तो हिंसा का निषेध हुआ अब पशुओं की रक्षा के सम्बन्ध में प्रमाण देखियेः—

घृतेनाक्तौ पशूंस्त्रायेथाम्। यजु० ६।११

अर्थ—हे घृत चाहने और यज्ञ के कराने हारो तुम (पशून्) पशुओं को (त्रायेथाम्) पालो।

द्विपादव चतुष्पात्पाहि । यजु० १४।८

अर्थ—दो पैर वाले और चार पैर वाले पशुओं की रक्षा करो कहां तक लिखा जाय वेद से सैकड़ों प्रमाण दिये जा सकते हैं, जिनमें पशु हिंसा का निषेध तथा पशु पालन की आज्ञा पाई जाती है। यदि कहो कि साधारण तौर से तो पशु हिंसा नहीं करनी चाहिये, पर यज्ञ में पशु हिंसा का निषेध नहीं है इसके उत्तर में केवल एक प्रमाण ही काफी होगा:—

यजमानस्य पशून्पाहि । यजु० १।१

अर्थात् यजमान के पशुओं का पालन करो। यहां यजमान के पशुओं की रक्षा करने की आज्ञा है न कि यजमान के पशुओं को मार के अग्नि में स्वाहा करने की। ऐसी स्पष्ट आज्ञा होते हुए भी जो लोग कहते हैं कि यज्ञ में पशुओं का मांस डालने की वेद आज्ञा देता है उन्हें क्या कहा जाय ?

यज्ञ में हिंसा का भ्रम होने का कारण वास्तव में 'मेध' शब्द प्रतीत होता है अर्थात् अश्वमेध, गोमेध, नरमेध आदि शब्दों का अर्थ यह समझा जाता है कि इन यज्ञों में इन २ पशुओं की हिंसा होती है। यह भ्रम "मेध" शब्द के अर्थों पर विचार करने से दूर हो सकता है।

मेध शब्द की मीमांसा—"मेध" शब्द के विषय में पाणिनी मुनि लिखते हैं:—

मेधृ- मेधा-हिंसनयोः संगमेच

अर्थात् "मेध" शब्द का अर्थ (१) मेधा बुद्धि (२) हिंसा

(३) संगम अर्थात संगति करण--मेल मिलाप है।

यहां मेध का अर्थ हिंसा भी है इसी से भ्रम हो जाता है कि गोमेधादि यज्ञों में पशु हिंसा अवश्य होती होगी। पर वास्तव में बात ऐसी नहीं है क्योंकि शतपथ ब्राह्मण कहता है:--

"अध्वरो वै यज्ञः" अहिंसा ही यज्ञ है। शतपथ तो ऐसा कहता है और हम यज्ञ में पशुओं के गले पर छुरी चलाते हैं। अतः यज्ञ में पशु हिंसा का मतलब पाश्विक वृतियों का हनन करना है न कि पशुओं की गर्दन काटना। पशु केवल अपना ही पेट भरना जानते हैं। परोपकार करना उन्होंने नहीं सीखा। ऐसे मनुष्य भी, जो केवल अपने ही लिये अन्न पकाते हैं, पशु के समान हैं। यज्ञ में इस प्रकार की पाश्विकता को हनन करके मनुष्य को दानशील बनना पड़ता है। आध्यात्मिक यज्ञों में अहंकार, क्रोध, आलस्य और स्वार्थादि पशुओं को हनन करना आवश्यक है। आधिभौतिक यज्ञों में यदि कोई संघ का विरोध करे वा संघ के उद्देश्य को हानि पहुंचाए, तो उस की हिंसा--उसे हटाना--उसके विरोध को दूर करना यज्ञ के रक्षकों का कर्तव्य ही है। युद्ध भी एक प्रकार का आधिभौतिक यज्ञ है, उसमें शत्रुओं की हिंसा करनी ही पड़ती है। आधिदैविक यज्ञ में औषधियां ही पशु* हैं। इन्हीं

---

*दधि मधु घृतमापो धाना भवन्त्येत द्वै पशूनां रूपम। (तैत्तिरीय संहिता)

अर्थ—दही, शहद, घी, जल [दूध] भुने हुए हैं--ये निश्चय से पशुओं के रूप हैं।

का यज्ञ के लिये हनन होता है।

वेद में पशु शब्द का अर्थ घोड़ा, गौ, बकरा आदि पशु ही नहीं किंतु यह शब्द अनेक अर्थों में आया है इस मतलब के लिये केवल एक प्रमाण काफ़ी होगा।

अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त…वायु पशुरासी तेनायजन्त …सूर्यःपशुरासीत्तेनायजन्त। यजु० २३।१७

अर्थ—आग पशु था, उसके द्वारा यज्ञ किया। वायु पशु था उसके द्वारा यज्ञ किया। सूर्य पशु था उस द्वारा यज्ञ किया।

इससे स्पष्ट होगया कि वेद में पशु शब्द कैसे विस्तत अर्थों में आता है। कि,

एतेऽपियेयाज्ञिका यज्ञ कर्मणि पशून्व्यापाद-
यन्ति ते मूर्खाः परमार्थं श्रुतेर्न जानन्ति।

अर्थ—जो याज्ञिक लोग यज्ञ कर्म में पशुओं का घात करते हैं वे मूर्ख वेद के परम अर्थ को नहीं जानते।

यज्ञ के पर्यायवाची शब्द—यज्ञ के पर्याय वाची शब्दों से भी विदित होगा कि यज्ञ अहिंसात्मक कर्म है यज्ञ का एक नाम "अध्वर" है जिसका अर्थ है (अ) नहीं होती जिसमें (ध्वर) हिंसा। इसी प्रकार से यज्ञ को "देवताता" और प्रजा-पति" नामों से भी पुकारा जाता है। देवताता का अर्थ देवों के लिये विस्तार किया हुआ कर्म है। अब देवों का भोजन कहीं भी मांस वर्णन नहीं किया गया है किंतु यजुर्वेद में "देवाआज्यपा:"

अर्थात् देव घी पीने वाले होते हैं, ऐसा लिखा है। "प्रज्ञापति का अर्थ (प्रजा) पशुओं का [पति] रक्षक, ऐसा है, प्रजा का भक्षक नहीं। यज्ञ के और भी नाम हैं पर सब का उद्धरण यहां आवश्यक प्रतीत नहीं होता केवल इतना बता देना काफी है कि किसी में भी पशु हिंसा का भाव नहीं पाया जाता।

ऊपर हमने अच्छे प्रकार से सिद्ध कर दिया है कि यज्ञ में हिंसा नहीं है और यदि 'मेध' शब्द के अर्थों में हिंसा का भाव पाया भी जाता है तो उसका मतलब पाशविक वृत्तियों का हनन अथवा यज्ञ के शत्रुओं की हिंसा ही अभिप्रेत है। बकरा, मेंढ़ा आदि की हिंसा नहीं। पश्चिमी विद्वान् जो "यज्ञ" शब्द का अर्थ (Sacrifies) बलिदान करते हैं वह इसी अभिप्राय से ठीक हो सकता है। वास्तव में यज्ञ शब्द का ठीक अर्थ (organisation) अर्थात् संगठन ही है। इसी लिये वेदों में यज्ञ को पुरुष कहा है।

यज्ञ का उद्देश्य—प्रश्न हो सकता है कि यज्ञ का उद्देश्य अर्थात् फल क्या है? इस सम्बन्ध में वेद में लिखा है—

ओ३म् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जाग्रहि त्वमिष्टा पूर्तेसꣳ सृजेथा मयंच। अस्मिन्त्सधस्थे, अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत।

इसमें यह भाव पाया जाता है कि (इष्टापूर्ते) इष्ट सुखों की पूर्ति—प्राप्ति के लिये यज्ञ होता है। जिस निमित के लिये यज्ञ

किया जाता है उस निमित्त का नाम इष्ट है। अतः जिस २ उद्देश्य से यज्ञ किया जाता है उस उस उद्देश्य की प्राप्ति अवश्य होजाती है वह उद्देश्य चाहे धनोपार्जन हो वा बल प्राप्ति वा शत्रु पर विजय। अर्थात संसार का कोई भी सुख ऐसा नहीं जो यज्ञ से प्राप्त न हो सके। गीता में यही भाव कैसे स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया गया है:—

सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरो वाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेषवोऽस्त्विष्ट कामधुक्॥

गी० ३। १०

अर्थ—प्रजापति ने कल्प के आदि में यज्ञ सहित प्रजा को रच कर कहा, हे मनुष्यों! तुम (अनेन) इस यज्ञ द्वारा (प्रसविष्यध्वम्) वृद्धि को प्राप्त होओ और (एषः) यह यज्ञ तुम लोगों को (इष्ट काम धुक) इष्ट कामनाओं का देने वाला (अस्तु) होवे। अतः सिद्ध हुआ कि यज्ञ का फल उन्नति करना तथा इष्ट कामनाओं की सिद्धि है। अर्थात। इहलोक तथा परलोक दोनों लोकों के सुख यज्ञ द्वारा प्राप्त हो सकते हैं और इसलिये जो लोग यज्ञ नहीं करते वह दोनों प्रकार के सुखों से वंचित रहते हैं।

नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यकुरु सत्तम। गी४।३१

अर्थ-- (अयज्ञस्य) यज्ञ रहित पुरुष के लिये (अयं लोकः) यह लोक भी सुखदायी (न अस्ति) नहीं है फिर (अन्यः) परलोक (कुतः) कैसे सुखदायी हो सकता है।

देवयज्ञ—"देव" तथा "यज्ञ" दोनों शब्दों का स्पष्ट अर्थ समझ लेने के पश्चात अब "देवयज्ञ" का तात्पर्य स्पष्ट समझ में आ सकता है। अर्थात—

(१) देवों द्वारा किया हुआ संगठन वा कर्म।

(२) देवों के निमित्त किया हुआ संगठन वा कर्म। दिवु धातु के अनेक अर्थों को लेते हुए "देव यज्ञ" के निम्न प्रकार अनेक अर्थ हो सकते है। जैसे:—

(१) क्रीड़ा:—शारीरिक बल को बढ़ाने के लिये क्रीड़ा कुशल लोगों का बल वर्धक खेलों के लिये संगठन (Playing club)

(२) विजगीषा:—अपनी जाति की रक्षा के लिये शत्रु पर विजय प्राप्ति की इच्छा रखने वाले तेजस्वी वीरों का संगठन।

(३) व्यवहार:—व्यवहार चतुर वैश्यों का संगठन (Trading Company)।

(४) द्युति:—तेजस्वी लोगों का संगठन, ब्रह्मचर्यादि तेजोत्पादक बातों का प्रचार करने के लिये।

(५) मोद:—ऐसे लोगों का संगठन जो धर्म अथवा जाति के लिये अनेक प्रकार के कष्ट उठाते हुए भी अपना कर्तव्य पालन करने में सदा आनन्द का अनुभव करें। यह समस्त प्रकार के संगठन देव यज्ञ कहला सकते हैं।

हवन यज्ञ

किन्तु मनु जी महाराज ने जिस नित्य कर्म को देव यज्ञ नाम दिया है, वह हवन यज्ञ है:—

अध्यापनं ब्रह्म यज्ञः पितृयज्ञस्तुतर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृप यज्ञो ऽतिथिपूजनम् । मनु ३।७०

इस श्लोक में स्पष्ट बतलाया गया है कि (होमो दैवो) हवन ही देवयज्ञ है।

हवनयज्ञ क्या है ?—हवन किस क्रिया का नाम है। यह हर मनुष्य जानता है। घृत और अनेक प्रकार की सुगन्धित औषधियों को मन्त्रों के द्वारा अग्नि में जलाना हवन कहलाता है। इसी क्रिया को मनु ने देवयज्ञ बतलाया है इसके कारण निम्न लिखित हैं:--

हवनयज्ञ देवयज्ञ कैसे है ?--(१) हवन विद्वानों से कराया जाता है। इसलिये हवन यज्ञ देव यज्ञ है।

(२) हवन यज्ञ में वेद मन्त्र पढ़े जाते हैं, इस लिये भी हवन यज्ञ देव यज्ञ है।

(३) हवन यज्ञ अनेक प्रकार की जड़ी बूटियों तथा घृतादि दिव्य गुण युक्त पदार्थों से किया जाता है। इस लिये हवन यज्ञ देव यज्ञ है।

(४) हवन यज्ञ अग्नि, वायु आदि जल देवताओं की शुद्धि के निमित्त किया जाता है, इस लिये हवन यज्ञ देव यज्ञ है।

(५) हवन यज्ञ परम देव परमात्मा की प्रसन्नता के लिये किया जाता है, इस लिये हवन यज्ञ देव यज्ञ है।

(६) हवन यज्ञ का प्रयोजन अपने अन्दर देवत्व प्राप्त करना है, इस लिये हवन यज्ञ देवयज्ञ है।

इत्यादि अनेक कारणों से हवन यज्ञ देव यज्ञ कहलाता है।

हवन, हवि और होता "शब्द"—हवन" शब्द "हु" धातु से बना है जिसका अर्थ:--

हु--दाना दानयोः। धातुपाठ

अर्थात (दान) देना और (आदान) लेना है। अर्थात वह क्रिया जिसमें देने और लेने का व्यवहार-:- हो, हवन कहलाता है। देव शब्द का अर्थ व्यवहार कुशल भी है इसलिए भी हवन यज्ञ देव यज्ञ है।

हवन में "देने" और "लेने" की प्रतिक्रिया होती ही है। अग्नि द्वारा वायु आदि देवों को हम घृत और सामिग्री आदि का दान देते हैं और उसके बदले में वायु शुद्धि वृष्टि शुद्धि आदि से हमें स्वास्थ्य, उत्तमजल और उत्तम अन्न आदि का आदान होता है। गीता में लिखा है:—

देवान् भावयताऽनेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्पर भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥ गीता ३। १

अर्थ—यज्ञ द्वारा देवों को संतुष्ट करो और वह देव तुम को संतुष्ट करेंगे। इस प्रकार परस्पर सन्तुष्ट करते हुए तुम सब कल्याण को प्राप्त होगे।

'हवि' और 'होता' यह दोनो शब्द भी 'हु' धातु से बने हैं। 'हवि' का अर्थ वह पदार्थ जो दान दिया जावे और 'होता' का अर्थ दान देने वाला है। वेद में लिखा है—

-:-देहि मे ददामि ते, यजु३।५०—अर्थ-मुझे दो, मैं तुम्हें देता हूँ

होता यक्षत्समिधाग्निम् ``आज्यस्य होतर्यज। यजु० २१। २६
होता यक्षत्``````हविर्होतर्यज। यजु० २१-४१

अर्थ—होता समिधाओं से अग्नि का यज्ञ करता है``हे होता तू घृत का यज्ञ कर (२६) होता यज्ञ करता है``````हे होता तू हविका यज्ञ कर (४१)

अतः घृतादि जो पदार्थ अग्नि से हवन किये जाते हैं वह सब 'हवि' और हवन करने वाला होता कहलाता है।

'हवन' शब्द और 'यज्ञ' शब्द के अर्थों में समानता--हवन की क्रिया में यज्ञ शब्द के तमाम अर्थ आ जाते हैं। अग्नि❀ देव है उसे शुद्ध पवित्र हवन कुण्ड में (वेदि पर) श्रद्धा पूर्वक स्थापन करते हैं, यही देव पूजा है। अनेक औषधियों को मिला कर हवि बनाते हैं, यह संगति करण है। हवि वायु देवताओं के निमित्त अग्नि को दी जाती है, यह दान है। इसी प्रकार से तमाम प्रकार के 'यज्ञ' भी हवन रूप ही हैं। जैसे 'राष्ट्र यज्ञ' में राजा ही 'अग्नि है' राज कर 'हवि' है। और प्रजा होता है। जान माल की रक्षा आदि सुख, जो राजा से प्रजा को प्राप्त होता है, वह आदान है। समाज यज्ञमें ब्राह्मण अग्नि है' अन्न, धनादि दान 'हवि' है, समाज के दूसरे लोग (क्षत्रिय और वैश्य आदि) होता' है, धर्म उपदेश 'आदान'है, ज्ञान यज्ञ में, गुरु'अग्नि'

❀ऋग्वेद १। १। १ में अग्नि को "यज्ञस्य देव" यज्ञ का देव कहा है।

है, शिष्य 'होता' है, और 'समिधा-÷' 'हवि' है, विद्या जो गुरु से प्राप्त होती है, वह 'आदान' है। गृहस्थ यज्ञ में पत्नि अग्नि है, पति होता है, वीर्य हवि है, सन्तान आदान है। इत्यादि। गीता में अनेक यज्ञों का वर्णन हवन रूप में किया है। उदाहरण के लिये, देखिए यह आध्यात्मिक यज्ञ का वर्णन है:—

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषया नन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति।२६-
सर्वाणीन्द्रिय कर्माणि प्राणकर्माणि चापरे। आत्म संयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञान दीपिते॥२७॥ गी० अ० ४

अर्थ----अन्य लोग श्रोत्रादि सब इन्द्रियों को संयम रूपी अग्नि में हवन करते हैं और दूसरे लोग शब्दादि विषयों को इन्द्रिय रूपी अग्नि में हवन करते हैं॥ २६ ॥ दूसरे योगी जन सम्पूर्ण इन्द्रियों के कर्मों को तथा प्राणों के व्यापार को ज्ञान से प्रदीप्त की हुई आत्म संयम रूपी योग अग्नि में हवन करते हैं।

अग्नि—अग्नि के बिना हवन हो ही नहीं सकता। और चूंकि हवन और यज्ञ दोनों शब्द समानार्थक हैं, इसलिये प्रत्येक यज्ञ में भी अग्नि का होना आवश्यक है। ऊपर जो उदाहरण दिया गया है उससे स्पष्ट है कि अग्नि का तात्पर्य सदा भौतिक अग्नि ही नहीं है अतः यहां 'अग्नि' शब्द का अर्थ जान लेने आवश्यक हैं। निरुक्तकार लिखते हैं:-

÷पहिले शिष्य समिधा लेकर गुरु के पास जाया करते थे।

अग्निःकस्मादग्रणी भवति। नि० दै० ४ र्थ पाद

अग्नि शब्द का अर्थ अग्रणी अर्थात नेता (Leader) है अतः प्रत्येक यज्ञ (संघ) का नेता ही उस यज्ञ का अग्नि है सारी हवि (धन) उसी को दी जाती है पर वह अपने पास न रख कर उस "हवि" को किसी न किसी रूप में संघ को ही लौटा देता है।

संघ (यज्ञ) का नेता कैसा होना चाहिये, यह बात जानने के लिये भी दूर जाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि अग्नि शब्द के अर्थों पर विचार करने से ही यह वात भी जानी जा सकती है। अग्नि शब्द "अं गुगति पूजनयोः" धातु से बना है (गतेस्त्रयोऽर्थाः ज्ञानं, गमनं, प्राप्तिश्चेति) गति के तीन अर्थ हैं, ज्ञान, गमन और प्राप्ति (पूजनं नाम सत्कारः) पूजन का अर्थ सत्कार है। अस्तु नेता वह है, जो ज्ञानी हो, गमन शील हो (अर्थात सुस्त न हो) संघ से धनादि प्राप्त कर सके। और संघ में पूजनीय समझा जावे अर्थात संघ के सब सभासद उसका सत्कार करें। इस विषय में वेद की शिक्षा भी देखिये:---

अग्नि मीले पुरोहितं यज्ञस्यदेव मृत्विजम्।
होतारं रत्न धातमम् ॥ ऋ० १ । १ । १

अर्थ—मैं (अग्नि) नेता के गुण वर्णन करता हूं। (पुरोहितं) वह संघ में आगे रक्खा जाता है (यज्ञस्यदेवं) संघ का देव अर्थात सङ्घ में सब से विद्वान है—यज्ञ को प्रकाशित करने वाला है। (ऋत्विजम्) समय समय के अनुकूल काम करता है (होतारं)

व्यवहार कुशल है और (रत्न धातमम्) धनों को धारण करने वाला है।

इस मन्त्र में कैसे सुन्दर शब्दों में नेता (Leader) के गुण बताये गये हैं। लीडर का काम आगे रहना है, जिस उद्देश्य से संघ बनाया गया है उस उद्देश्य, तथा उस की प्राप्ति के उपाय को पूर्ण रीति से जानने वाला होना चाहिये, जैसा २ समय उपस्थित हो उस के अनुकूल ही कार्य करने वाला हो, व्यवहार कुशल हो, और संघ के उद्देश्य की पूर्ति के लिये जो धन प्राप्त हो उस की अच्छे प्रकार रक्षा करने वाला हो।

भौतिक अग्नि के गुणों पर विचार करने से भी इस विषय से बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त की जा सकती है।

भौतिकाग्नि—

(१)—प्रकाशमान होती है। (२) दग्ध करने का गुण रखता है। (३) गतिशील होता है और वायु आदि में गति उत्पन्न करता है। (४) सदा ऊपर की ओर जाता है।

संघ का नेता—

(१) परम ज्ञानी होना आवश्यक हैं। (२) तेजस्वी, वीर होना आवश्यक है, जो संघ के शत्रुओं का नाश कर सकें। (३) सदा आगे बढ़ना तथा संघ को चलना उसका काम है। (४) सदा ऊपर को उठे नीचे न दबे, उच्च प्रकृति का हो, नीच प्रकृति का न हो।

पुरोहित—जो अग्नि है वही पुरोहित है। क्यों कि, दोनों समानार्थक शब्द है। देखो:—

अग्निः—अग्रणीर्भवति नि० जो अग्रणी हो वही अग्नि कहलाता है।

पुरोहितः—पुर एनं दधति नि० जिसे (पुरः) आगे (दधति) धारण करते हैं वह पुरोहित कहलाता है।

वेद के प्रथम मन्त्र अग्निमीले पुरोहितं में भी अग्नि को ही पुरोहित कहा गया है।

प्रत्येक यज्ञ का जो नेता होता है वह पुरोहित कहलाता है। प्रत्येक यज्ञ में पुरोहित यजमान के आगे बैठता है। पुरोहित के सम्बन्ध में निम्न लिखित वेद मन्त्र भी विचारणीय हैः—

संशितं मे ब्रह्म, संशितं वीर्यं बलम। संशितं क्षत्रं जिष्णु येषाहमस्मि पुरोहितः। यजु० ११। ८१

अर्थ—(मे ब्रह्म) मेरा ज्ञान—मेरी विद्या (संशितं) प्रशंसा के योग्य हो और (येषाम) जिनका (अहम) मैं (पुरोहितः) पुरोहित—अग्रगामी--नेता हूं, उनका (वीर्य बलम्) वीर्य और बल (सन्शितम्) प्रभाव शाली हो, और उनका (जिष्णु क्षात्रं) विजय शील क्षात्र तेज भी (सन्शितम्) खूब प्रचण्ड हो।

भावार्थ—पुरोहित का कर्तव्य है कि अपने ज्ञान को सदा बढ़ाता रहे और अपने यजमानों के बल वीर्य तथा क्षात्र तेज को उग्र बनावे।

क—ईश्वर पुरोहित है। क्यों कि—

१—तीन अनादि पदार्थों में परमात्मा अग्रणी हैं। उसी की प्रेरणा से सन्सार चल रहा है। (२) परमात्मा सब जगह आगे

से उपस्थित है। (३) सृष्टि के प्रारम्भ में सब देवों से पहले प्रगट हुआ।

ख - ब्राह्मण पुरोहित है। क्यों कि:—

(१)—चारों वर्णों में ब्राह्मण अग्रणी है। (२) यज्ञ कर्मों में ब्राह्मण अग्रभाग में उपस्थित होता है, वह यजमान के आगे बैठता है।

ग—भौतिक अग्नि पुरोहित है। क्योंकि:—

(१) हवनादि यज्ञों में सबसे पहिले अग्नि स्थापन किया जाता है। (२) वायु आदि समस्त भौतिक पदार्थों में गति उत्पन्न करता है।

तीन प्रकार के हवन—हम पीछे लिख चुके हैं कि यज्ञ तीन प्रकार के होते हैं आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक। यह भी सिद्ध कर चुके हैं कि यज्ञ और हवन समानार्थक शब्द हैं इससे सिद्ध हुआ कि हवन भी तीन प्रकार का है जो क्रिया प्राय: हवन के नाम से प्रसिद्ध है और जिस में भौतिक अग्नि में घृतादि अनेक पदार्थ अर्पण किये जाते हैं वह क्रिया मूल रूपसे तो आधिदैविक हवन ही है और इसी को मनु ने देवयज्ञ के नाम से पुकारा है। परन्तु इस क्रिया पर यदि सूक्ष्म विचार किया जावे तो इससे आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीनों प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं अर्थात यों कहो कि इस क्रिया में तीनों प्रकार के हवनों का समावेश किया गया है। अर्पण की हुई हवि अग्नि द्वारा वायु, जल आदि समस्त देवताओं को प्राप्त होती है, इसलिये यह आधिदैविक हवन है।

वायु, जलादि के शुद्ध होने से संसार के समस्त जीवों को लाभ पहुंचता है, इसलिये यह आधिभौतिक हवन है। इसी क्रिया से हमारा अपना स्वास्थ्य भी सुधरता है। और, मन्त्रों के अर्थों पर विचार करने से हमें आत्मिक लाभ भी प्राप्त होता है यह हवन का आध्यात्मिक अंश है। इस प्रकार से जो मनुष्य ठीक विधि के साथ हवन करता है वह तीनों प्रकार के यज्ञों का फल प्राप्त करता है।

हवन का समय—मनुजी ने हवनयज्ञ नित्यकर्मों में सम्मिलित किया है। और प्रातःकाल तथा सायंकाल दोनों समय करने का उपदेश किया है:—

अग्नि होत्रं च जुहुयादाद्यन्ते द्यु निशोःसदा।
दर्शेन चार्ध मासान्ते पौर्णमासेन चैवहि ॥ मनु०४।२५

अर्थात दिन और रात्रि के आदि में नित्य अग्नि होत्र करे और अर्धमास के अन्त में अमावस्या और पूर्णिमा में क्रमशः दर्शेष्टि और पौर्णमास यजन करे।

प्रति दिन, प्रातः सायं, साधारण हवन करना तथा अमावस्या और पूर्णमासी को वृहत हवन करना चाहिये वेदों में भी इसी प्रकार की आज्ञा पाई जाती है।

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता। वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥३॥ अ० १९।५५।३

प्रातः प्रातः गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनसस्य दाता । वसोर्वसो वसुदान एधीन् धानास्त्वा शतं हिमा ऋधेम ॥४॥ अ० १९।५५।४

अर्थात (अयं अग्नि:) यह हवन यज्ञ की अग्नि (सायं सायं, प्रात: प्रात:) सांझ सवेरे उपस्थित होकर (सौमनस्य) आरोग्य वा आनन्द, और (वसो:) धनादि उत्तम पदार्थों का (दाता) देने वाला है इसीलिये यज्ञ को वसुदान कहते हैं । हम लोग अग्नि होत्र से पुष्ट होते तथा १०० वष तक जीने की इच्छा करते हैं ।

इन मन्त्रों में न केवल यह कहा है कि गृहपति को प्रात:काल और सायंकाल दोनों समय हवन की अग्नि प्रज्वलित करनी चाहिये किंतु यह भी बतला दिया है कि इससे आरोग्यता,आनंद तथा धनादि उत्तम पदार्थ प्राप्त होते हैं। और मनुष्य पुष्ट होकर १००वर्ष की आयु प्राप्त करता है । इसीलिये तो यजुर्वेद के अध्याय १ मं०२ में ताकीद के साथ कहा गया है "माह्वार्मीते यज्ञपतिह्वीर्षीत" हे यज्ञ तू यजमान को मत त्याग और यजमान भी तुझे कभी न त्यागे ।

वायु ही मनुष्य का जीवन है । यह वायु जब अशुद्ध होजाता है, तो अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करता है । रात्री का वायु बन्द मकानों में घुटा हुआ इस योग्य नहीं रहता, कि उसमें दिन भर श्वासउच्छ्वास लिया जावे, इसलिये प्रातःकाल का हवन उस वायु को पवित्र करके स्वास्थ्यदायक बना देता है । इसी प्रकार से

सायं काल को हवन द्वारा फिर वायु को शुद्ध करने की आवश्य कता है ताकि रात्री के समय शुद्ध वायु में सांस लिया जावे। "अग्नि होत्रं सायं प्रातर्गृहाणां निष्कृतिः"। (तैत्तिरीयारण्यक १०।६३।१) अग्नि होत्र सुबह शाम किया हुआ घरों की शुद्धिकरने वाला है। हवन की अग्नि में वायु को शुद्ध करने का विशेष गुण है। अतः जो मनुष्य सायं प्रातः दोनों काल हवन करते हैं, उन्हें हर समय शुद्ध वायु मिलने के कारण आरोग्यता, पुष्टि और १०० वर्ष की आयु प्राप्त होती हैं। और जो मनुष्य दोनों समय हवन नहीं करते वह अनेक प्रकार के रोगों में ग्रसित होकर शीघ्र ही मृत्यु का ग्रास बन जाते हैं।

हवन प्रातः काल सूर्योदय के पश्चात् और सायंकाल सूर्य अस्त होने से पहिले ही कर लेना चाहिये। कारण यह है कि यज्ञ अहिंसात्मक कर्म है इसलिये यदि हवन अंधेरे में किया जायेगा तो हवन कुण्ड वा हवि आदि में कोई जीव पड़ा होगा तो वह दिखाई न होगा। इसके अतिरिक्त रात्रि के समय पतंगादि छोटे २ कीट अग्नि के प्रकाश से आकर्षित होकर अग्नि में गिर जाते हैं जिन्हें किसी तरह भी बचाया नहीं जा सकता इसलिये प्रातः काल अच्छी तरह प्रकाश होने पर और सायंकाल को प्रकाश रहते हुए हवन कर लेना योग्य है, इसलिये यह भी सिद्ध हुआ कि प्रातः काल हवन सन्ध्या के पश्चात् और सायंकाल सन्ध्या से पूर्व करना उचित है।

ऋतु परिवर्तन के समय भी वृहत हवन करना चाहिये गोपथ ब्राह्मण में लिखा है:—

भैषज्य यज्ञा वाएते तस्याहतु संधिषु प्रभुज्यन्ते ।
ऋतु संधिषु वै व्याधिर्जायते ॥ गो० ब्रा० ३० । १ । १९

अर्थ—यह औषधियां (महा मख) हैं, अतः ऋतु संधि के समय यज्ञ किये जाते हैं, क्योंकि ऋतु संधियों में रोग उत्पन्न होते हैं।

ऋतु कालानुकूल यज्ञ करने का वेद में भी विधान है।

ओ को अग्नि मीले हविषा घृतेन। स्त्रु या मनाता ऋतुभिर्धर्वभि ॥ ऋ० । ८४ । १४

(अर्थ) (कः) अग्नि (अग्निम् ईले) अग्नि की प्रशंसा करता हूं और (हविषा) हविसे (घृतेन) घी से (स्त्रुया) स्रुये नाम यज्ञ पात्र से सजावे। दुःख दूर करता है।

"ध्रुवेभिः ऋतुभिः" तथा नियम से अवश्य आने वाले ऋतुओं के अनुकूल हवन करना चाहिए।

हवन न करने से पाप होता है—महर्षि स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं:—

"(प्रश्न) क्या होम करने के बिना पाप होता है? (उत्तर) हां! क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न होके वायु और जल को बिगाड़ कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दुःख प्राप्त कराता है उतना ही पाप मनुष्य को होता है। इसलिए उस पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उस से अधिक, वायु और जल में फैलाना चाहिये" (सत्यार्थप्रकाश) तातपर्य यह है, कि जब

मनुष्य, श्वासोच्छ्वास तथा मलमूत्रादि से जल और वायु को दुर्गन्धित करके रोगों का कारण बनता है तो उस दुर्गन्ध को दूर करना भी उसी का कर्तव्य है। अन्यथा संसार में रोग फैलाने का पाप उसे अवश्य होगा। इसी लिये हवन नित्य प्रति दो बार करना अत्यन्त आवश्यक है जैसा कि ऊपर प्रमाणों से सिद्ध किया जा चुका है। और चूंकि मनुष्य मरण (पर्यन्त) मल मूत्र आदि द्वारा जल वायु को बिगाड़ता है, इसलिये उसे उसके प्रतिकार में मरण (पर्यन्त) ही हवन करना योग्य है। जैसा कि नीचे के प्रमाण से भी सिद्ध है:—

एतद्वै जरामर्यं सत्त्रं यदग्निहोत्रं जरयावाह्योवास्मान्मुच्यते मृत्युनाव. ॥ शत० १२।४।१।१

अर्थ—(एतत) यह (सत्त्रं) सत्त्र (यत्) जो (अग्नि होत्रं) अग्नि होत्र कहलाता है (वै)निश्चय पूर्वक (जरामर्यं) जरा अवस्था तथा मृत्यु पर्यन्त चलने वाला है। (वा) या त (जरया) जरा अवस्था को पहुंच कर (अङ्ग स्थिल हो जाने के कारण ही) मनुष्य (अस्मात् मुच्यते) इस से छुटता है (वा) या (मृत्युना) मरने पर ही।

हवन कहां करना उचित है ?—सन्ध्या जंगल में जल के किनारे एकान्त स्थान में करनी चाहिये, परन्तु हवन यज्ञ घर में परिवार सहित करना उचित है। क्यों कि हवन, घर की वायु को शुद्ध करने के लिये किया जाता है। इस कर्म को सपत्नीक करना परम आवश्यक है "अयज्ञो वै एष, यो अपत्नीकः।"

(तै० ब्रा० ३ । ३ । ३) वह निश्चय यज्ञ कर्म के अयोग्य है, जो पत्नी से रहित है । वेद में भी लिखा है:—

प्रैषां यज्ञे निविद्रः स्वाहा शिष्टां पत्नी भिर्वहतह युक्ता।

अर्थ—आज्ञाए तथा आत्म निवेदन करने की रीतियां जानने वाले इस यज्ञ में नियुक्त हुए। शिष्ट लोग (पत्नीभि: वहत) पत्नियों सहित यज्ञ का भार उठावें ('स्वाहा) यज्ञ में मेरा समर्पण हो ।अत :सिद्ध हुआ कि यज्ञ सपत्नीक ही करना चाहिये। सपत्नीक यज्ञ का बड़ा महत्व है क्यों कि सब श्रेष्ठ कर्मों का नाम यज्ञ है और यदि उन कर्मों में स्त्रियां सम्मिलित न हों तो जिस प्रकार से एक पहिये की गाड़ी चल नहीं सकती, उसी प्रकार से केवल पुरुषों द्वारा किये गये कर्म भी कभी सफलता को प्राप्त नहीं हो सकते ।

हवन की सामग्री– वेद में लिखा है:—

वनस्पतिः शमिता देवो अग्निःस्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन॥

अथर्व० का० ५ सू० १२ मन्त्र १० ।

अर्थ—(शमिता देवो अग्नि:) शान्ति कर्ता अग्नि देव (वनस्पति: मधुना घृतेन हव्यं) वनस्पति तथा मधुर घृत में बनी हव्य का (स्वदन्तु) स्वाद लेवे। इस से प्रगट है कि वनस्पति तथा घृत से ही हवि बनता है ।

इडायास्पदं घृतवत् सरीसृयं जातवेदः प्रति हव्या गृभाय ।

अथर्व का३ सू१० मं ६

अर्थ—(जातवेदः) हे जातवेदः अग्नि (इडायाघृत वत् सरीसृयं पदं प्रति) गौ के घी से युक्त स्रवने वाले स्थान के प्रति (हव्या गृभाय) हव्य को ग्रहण कर अर्थात् हवि में गौ का घृत इतना होना चाहिये कि वह चूने लगे।

इडया जुह्वतो वय देव नू घृतवता यजे।
गृहान लुभ्यता वयं सं विशेमोप गोमतः॥

अथर्व का० ३ सू० १० मं० ११

अथ—(इडया घृतवता जुह्वतः) गौ द्वारा प्राप्त घी से युक्त हवि द्वारा हवन करने वाले स्वयं हम (देवान यजे) सब देवों का यजन करते हैं। (अलुभ्यतः) जिनमें कोई न्यूनता नहीं है, (गोमत) और जो गौओं से युक्त हैं, (गृहान) ऐसे घरों में स्वयं हम (सं विशेम) प्रवेश करे।

इससे स्पष्ट हुआ कि हमारे घरों में बहुत सी दूध देने वाली गौएं सदा रहनी चाहियें तभी हमें यज्ञ के लिये विपुल गोघृत उपलब्ध हो सकता है।

ध्रुवा अस्मिन गो पतौस्यात वह्वीः (यजु) हे गौवो ! तुम (अस्मिन गौ पतौ) इस गौ पालने वाले के पास (वह्वीः) बहुत संख्या में (ध्रुवाः स्यात) स्थिर रूप से बनी रहो।

धेनवः सायमास्पन्दमानाः। अथर्व का० ३ सू० १२ म ३

अर्थात् सायंकाल के समय गौऐं नाचती हुई आवें। कहां तक लिखें, वेद में अनेक प्रमाण हैं, जिनमें गौओं

का महत्व तथा गोपालन की आज्ञा है। किन्तु आज कल आर्य जाति ने गौओं का पालन पोषण छोड़ दिया है इसी कारण सुख समृद्धि और उन्नति ने भी आर्य जाति से मुख मोड़ लिया है। क्योंकि गौओं के बिना घृत और घृत के बिना यज्ञ नहीं हो सकता। और बिना यज्ञ के उन्नति नहीं, जैसा कि वेद में लिखा है:—

उद्य ेनमुत्तर नयाग्ने घृतेनाहुत । सयेनं वर्चसा सृज प्रजया च वहु कृधि । अथर्व० का० ६ सू० ५ मं० १

अर्थ—हे (घृतेनआहुत अग्ने) घी की आहुतियों से प्रज्वलित अग्नि ! (एनं उत्तरं उत्नय) इस मनुष्य को अधिक उन्नति कर (एनं वर्चसा सं सृज) इसको तेज से संयुक्त कर (च प्रजया वहु कृधि) और प्रजा से स्मृद्ध कर।

हवि में जो औषधियां डाली जाती हैं, वह चार प्रकार की हैं

(१) रोग नाशक—गिलोयादि औषधियां।

(२) पुष्टि कारक—दूध, फल, कन्द, अन्नादि।

(३) सुगन्धित -केशर, कस्तूरी, अगर, तगर, चन्दानादि

(४) मिष्ट पदार्थ—शक्कर, शहद, छुहारे, दाखादि।

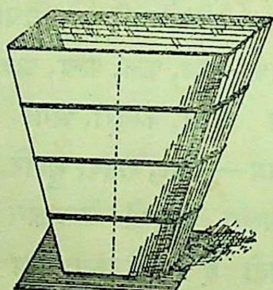
फिर अलग अलग ऋतुओं में अलग २ औषधियों से हवि तय्यार की जाती है। "देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि" (अथर्व कां ५ सू० १२ मं० १०) देवों के लिये अन्न और हवि ऋतुओं के अनुसार दो। क्योंकि "ऋतु सन्धिषु व्याधिर्जायत"

ऋतु संधियों में व्याधियां होती हैं अतः उन व्याधियों को शान्त करने के लिये ऋतु २ की अलग २ औषधियां और अलग २ अन्न हैं। (देखो इसी पुस्तक का परिशिष्ट)

यज्ञ समिधा—जो लकड़ी जलने में अधिक धूवां और दुर्गन्धि न दे वही लकड़ी यज्ञ में काम आने योग्य है। जैसे, पलाश, (ढाक), शमी (जांड), पीपल, वट, (वड), गूलर, आम, विल्व (बेल) आदि दूसरे देशों में भी इस मतलब के लिये अनेक लकड़ियां, मिल सकती हैं। यह लकड़िए सूखी हुई हों, ताकि अच्छे प्रकार जल सकें। और की ा लगी हुई वा किसी अन्य प्रकार मैली वा दूषित न हों।

हवन कुण्ड—हवन के लिये एक हवन कुण्ड वर्गाकार तालाब के आकार का होना चाहिये वह इस प्रकारका बनाया जावे कि यदि उसका पेंदा चारों ओर से चार अंगुल का हो तो ऊपर कोक्रमशः बढते हुए उसके ऊपर के किनारे सोलह सोलह अंगुल के हो जाने चाहियें और कुण्ड की खड़ी गहराई भी १६ अंगुल ही रहे बीच में तीन मेखलाएं (सीढ़िया सी) भी होनी चाहियें।

यह कुण्ड सामिग्री के परिमाणानुसार छोटा बड़ा बनाया जा सकता है इस आकृति



का हवनकुण्ड यदि पृथ्वी को खोद कर बना लिया जावे तो भी अच्छा है।

हवन कुण्ड और और आकृतियों के भी हो सकते हैं किन्तु यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अग्नि के बीच में वायु का

सञ्चार अच्छे प्रकार से हो सके। ऊपर की आकृति में मेखलाओं का लाभ यह है कि समिधाएं उन के ऊपर टिकाई जाती हैं जिस से समिधाओं की तहें ऊपर नीचे एक दूसरी से दूर रहती है और उन के बीच से वायु अच्छे प्रकार से प्रवेश कर सकती हैं। नीचे से तङ्ग और ऊपर से खुला रखने का भी यही लाभ है कि बीच में अग्नि जलती रहे और चारों तरफ से वायु नीचे तक पहुंच सके।

तालाब-आकार कुण्ड की आकृति के सम्बन्ध में श्री० पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार ने अपने एक लेख में जो "आर्य" लाहौर में प्रकाशित हुआ था बड़ा ही सुन्दर और शिक्षाप्रद विचार प्रगट किये थे। वह हम अपने पाठकों के मनन के लिये उक्त पत्र से नीचे उद्धृत करते हैं। आप लिखते हैं:—

"सब से पहले अग्नि कुंण्ड को देखिये, इस की आकृति समचतुरस्त्र अर्थात वर्गाकार (Square) है। तथा नीचे से बहुत छोटी पर धीरे २ ऊपर की ओर खुलती गई है इन दोनों बातों का क्या कारण है! पहले वर्गाकृति को ले लीजिये इसका तत्व है समय बचाना। कम से कम समय जिस में लगे वही काम वर्गाकार है क्यों कि उस के प्रत्येक दो विन्दुओं की बीच में छोटी से छोटी रेखा अर्थात सरल रेखा हैं। अभागे भारत वासियों के काम सभी गोल मोल (Round about) होते हैं उनका हवन कुण्ड विकृत हो गया है।

हवन कुण्ड के नीचे छोटे और ऊपर खुले होने से भी इसी प्रकार तत्व भरा हुवा हैं। इसका तात्पर्य यह हैं, कि जो कार्य करो

पहले थोड़ा आरम्भ करके धीरे २ बढ़ाओ। पहले बड़ी धूम धाम और ढोल ढमाके के साथ काम आरम्भ करके फिर हाथ पर हाथ धर कर बैठना मूर्खता* है। आरम्भ में शूर मत कहलाओ, परिणाम में बनो। इसी बात को वेद ने यों कहा है:—

आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धास उद्भिदः

यजु० अ० १५। मं० १४

हमारे सब कर्म चारों ओर से अविकृत—(square) तथा उद्भिद् (Growing upwards) हों, इसी कारण वृक्ष भी उद्भिद कहलाते हैं।

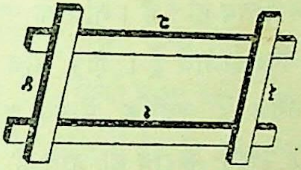
भारत वासियों का हवन कुंड केवल विकृत ही नहीं औंधा भी पड़ा है।" सचमुच कितने उत्तम विचार हैं। हवन कुण्ड हमें कितनी सुन्दर शिक्षा देता है।

समिधा चयन—यदि समिधाएं सूखी तथा पतली भी हों पर यदि उन्हें बे ढंगे तौर से हवन कुण्ड में भी भर दिया जायेगा तो उनके बीच में वायु का ठीक संचार न होने से अग्नि अच्छे प्रकार न जल सकेगी और घर धूएं से भर जायेगा इसलिये समिधाएं ठीक रीति से चयन करनी चाहियें।

---

* तीन मेखलाऐं कार्य सिद्धि के लिये, तीन सीढ़िया (Stages) हैं अर्थात मनुष्य को सीढी २ चढ़ कर उन्नति करनी चाहिये और ज्यों २ कार्य उन्नति करता जाय उतना ही काम का विस्तार भी बढ़ना चाहिये (लेखक)

समिधा चयन की रीति यह है कि कुण्ड के पेंदों में छोटी २ लकड़िएं बिछाकर—÷ उनके ऊपर चारों किनारोंके साथ २ चार छोटी लकड़ियां इस प्रकार रख देनी चाहिये जिस प्रकार से ऊपर के चित्र में दिखलाई गई हैं फिर इसी प्रकार से फिर चार लकड़ियां और इनके ऊपर रखनी चाहियें। पहिले समिधा सं० १ व २ के ऊपर और पीछे सं० ३, ४ के ऊपर इसी प्रकार से कुण्ड में तह पर तह समिधाएं चयन करनी चाहियें ऊपर की समिधायें अधिक अधिक बड़ी होती जायेंगी। इस प्रकार से कुण्ड के मध्य



में समिधाओं का एक और कुण्ड बन जावेगा। यह समिधायें कुण्ड की दीवारों से मिली हुई न रखनी चाहिये किन्तु कुण्डकी दीवारों तथा समिधायों के मध्य में कुछ अन्तर रहना चाहिये ताकि चारों तरफ से वायु का प्रवेश नीचे तक हो सके। सामिग्री समिधाओं के कुण्ड के मध्य मेंऔर घृत समिधाओं के ऊपर तथा मध्य भी डालना चाहिये, समिधाओं और कुण्ड की दीवारों के बीच में सामग्री नहीं डालनी चाहिये अन्यथा वायुका प्रवेश बन्द हो जायेगा।

÷ पैंदे को लकड़ियों से ढक देना इस लिए आवश्यक है कि इससे आरम्भ में जो अग्नि कुण्ड में डाली जाती है उसका ताप कुण्ड की धातु में न फैलने से शीघ्र ही लकड़ियों में अग्नि प्रवेश कर जाती है।

यज्ञ पात्र—हवन के लिये कुन्ड के अतिरिक्त कुछ और पात्रों की भी आवश्यकता होती है। घृत रखने के लिये एक गहरा कटोरा, घृत की आहुतियां डालने के लिये चमचा, बचा हुआ घृत जल में टपकाने के लिये एक चौड़ा कटोरा, आचमन का जल रखनें को तांवे के छोटे२ गिलास और आचमनियां (छोटे चमचे) सामिग्री रखने की छोटी२ थालियां, जल के लिये लोटा। जल के पात्र तांवे के उत्तम होते हैं। तांवे के पात्र में जल रखने से जल के रोगाणु नष्ट होजाते हैं। शेष पात्र चांदी सोने वा काष्ट के हों तो उत्तम है क्योंकि पीतल कांसी आदि धातों के बर्तनों में घृतादि पदार्थ खराब हो जाते हैं।

हवन, मन्त्र बोल कर ही क्यों करना चाहिये—हवन वेद मन्त्रों द्वारा किया जाता है। अर्थात मन्त्र पढ़ २ कर आहुतियां दी जाती हैं। यों तो मन्त्र पढ़े बिना ही उत्तम२ सुगन्धित और रोग नाशक पदार्थ अग्नि में डाले जांयें, तो भी लाभ ही होगा हानि न होगी। किंतु वेद मन्त्रों के उच्चारण से जो आध्यात्मिक लाभ होता है, वह अपूर्व ही है। मन्त्रों के पढ़ने से निम्न लिखित लाभ भी है:—

(१) वेदों का पठन पाठन, मनन तथा रक्षा। (२) हवन के लाभों का विदित हो जाना तथा और अनेक आध्यात्मिक लाभ (जो आगे मन्त्रों की व्याख्या पढने सेविदित होंगे)। (३) क्रमशः थोड़े २ समय के पश्चात थोड़ी२ आहुति पढ़ने से अच्छी प्रकार जलना तथा सब मनुष्यों का साथ ही आहुति डालना

४—खाली बैठने से मन इधर उधर दौड़ता है तथा बुरे बुरे संकल्प मन में उठते हैं। मंत्र पढ़ने से मन उन मंत्रों के मनन में लगा रहता है।

५—दूसरे देखने वाले मनुष्यों पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है।

स्वाहा—मन्त्र के पश्चात् "स्वाहा" शब्द का उच्चारण करके आहुत डालनी चाहिये जैसा कि वेद में लिखा है—

स्वहा कृतं हविर दन्तु देवा। अथर्व० ५।१२।२१

अर्थः—स्वाहाकार द्वारा दिया हुआ द्रव्य देव खावें।

स्वाहा शब्द के अनेक अर्थ हैं किन्तु इसका मुख्य अर्थ (स्व+अ+हा*) अपने आपका, वा निज पदार्थों का (संसार की भलाई के लिये) समर्पण करना है। वास्तव में आत्म समर्पण ही यज्ञ है क्योंकि उसके बिना कोई यज्ञ (शुभ कर्म) हो ही नहीं सकता। इस बात के महत्व को प्रगट करने के लिये ही यह शब्द "स्वाहा" प्रत्येक मन्त्र के पश्चात बोला जाता है। इसके साथ ही अनेक अवसरों पर "इदम न मम" यह मेरे लिये नहीं है, यह शब्द भी कहे जाते हैं अर्थात त्यागी हुई वस्तुओं से ममत्व को पूर्ण रूप से हटा लेना होता है।

हवन के लाभ—संसार में लाभालाभ को विचारे बिना कोई भी कार्य नहीं किया जाता। इसलिये अब यह देखना चाहिये, कि हवन करने से क्या लाभ है। शतपथ ब्राह्मण में लिखा

* हा=त्यागे (धातु पाठ)

है "यज्ञो वै श्रेष्ठतम कर्म" अर्थात यज्ञ ही सर्व श्रेष्ठ कर्म है। विचारना यह है कि इसमें श्रेष्ठता क्या है ? यदि इससे कोई लाभ ही नहीं, तो फिर यह श्रेष्ठतम कर्म कैसे कहला सकता है। फिर शतपथ ब्राह्मण कहता है—"नौर्ह वा एषा स्वर्ग्या । यदग्नि होत्रम" (शत० २-३-३-१५ ।) (यत) यह जो (अग्नि होत्रं) अग्नि होत्र हैं। (एषा) यह (हवै) निश्चय करके (स्वर्गा) स्वर्ग सुख को प्राप्त कराने वाली (नौः) नौका है। इन वचनों से सिद्ध होता है, कि शतपथ ब्राह्मण की सम्मति में अग्नि होत्र से सब प्रकार के सुख प्राप्त हो सकते हैं। अब निम्न लिखित वेद मन्त्रों को देखिये। वेद कहता है:—

मुंचामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्
ग्राहिर्जग्राह यद्ये तदेनं तस्या इन्द्राग्नि प्र मुमुक्तमेनम् ॥१॥
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीति एव
तमा हरामि निऋतेरूपस्थादस्यार्षमेनं शत शारदाय ॥२॥
सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥३॥
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तञ्छतमु वसन्तान्
शतं त इन्द्रो अग्निःसविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहा
र्षमेनम् ॥४॥ अथर्व० का०३ सू०११

अर्थ—हे व्याधिग्रस्य (त्वा) तुझको (कम्) सुख के साथ (जीवनाय) चिरकाल तक जीने के लिये (अज्ञात यक्ष्मात्

गुप्त यक्ष्मा रोग से (उत) और (राजयक्ष्मात्) सम्पूर्ण प्रगट राजयक्ष्मा रोग से [हविषा] हवन द्वारा (मुंचामि) छुड़ाता हूं । (यदि) जो (एतत्) इस समय (इनम्) इस मनुष्य को (ग्राहि:) रोग ने (जग्राह) पकड़ रक्खा है (तस्या) उस से (इन्द्राग्नी) इन्द्र-सूर्य का प्रकाश तथा होम-अग्नि इसको अवश्य छुड़ा देवें ॥१॥

(यदिक्षितायुः) यदि यह अपनी जीवन शक्ति को खो भी चुका हो (यदि वा परेतः) और यदि यह और भी परली, निराशा जनक दशा को पहुंच चुका हो। यदि (मृत्योः अन्तिकं) मरणकाल के समीप भी (नीत एव) पहुंच गया हो, तो भी [ते] उसको (निर्ऋतेः उपस्थात्) मृत्यु के चुंगल से [आ हरामि] बचा लेता हूं और (शतशारदाय) सौ वर्ष जीने के लिये (अस्यार्षम्) पुनः वलवान कर देता हूं ॥२॥

[सहस्राक्षेण शतवीर्येण] हजारों शक्तियों से युक्त, सौ वीर्यों वलों से युक्त [शतायुषा हविषा] शतायु देने वाले हवन से (एनम्) इस रोगी को (आहार्षम्) मैं मौत के पंजे से बचाता हूं [यथा] जिस से [इन्द्रः] परमात्मा [एनं] इस मनुष्य को [विश्वस्य दुरितस्य] समस्त दुरितों—पापों—दुख उत्पन्न करने वाले--शरीर मं घुसे--हुए रोगोत्पादक द्रव्यों से (पारं अति नयति) पार करदो ॥३॥

(शतायुषा) सौ वर्ष की आयु देने में समर्थ (हविषा) हवन द्वारा (एनं) इसको (आहार्षम्) मृत्यु के मुख से बचाकर लाया हूं । अब (वर्धमानः)बराबर वृद्धि को प्राप्त होता हुवा(शतं शरदः)

सौ शरद ऋतुओं तक, [शतं हेमन्तान] सौ वसन्त ऋतुओं तक (जीव) तू जीता रह। (इन्द्र) बिजली वा परमेश्वर (अग्नि होमाग्नि वा ज्ञानवान वा ईश्वर [सविता] सूर्य वा उत्पादक और प्रेरक प्रभु [बृहस्पतिः] विद्वान वैद्य वा महान ब्रह्माण्ड का स्वामी परमात्मा [ते] तुझे (शतं) सौ वर्ष की आयु प्रदान करे ॥४॥

यह है हवन के सम्बन्ध में वेद की शिक्षा। वेद के विचार में हवन से राजयक्ष्मा (तपेदिक) जैसा दुःसाध्यरोग भी दूर हो जाता है। और यदि वह रोगी फिर बराबर प्रतिदिन हवन करता रहे तो सौ वर्ष की आयु को प्राप्त हो सकता है। और देखियेः—

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम।

अथर्व० का० ५ सू० ३। १

अर्थ—(अग्ने) हे अग्नि देव! (वयं हम (त्वा) तुझे (इन्धानाः) प्रदीप्त करते हुए (तन्वंपुषेम) अपने शरीर को पुष्ट बनावें। (विवहषु) संग्रामों में (मम वर्चः अस्तु) मेरा तेज प्रकाशित होवे।

यहां प्रति दिन हवन की अग्नि प्रदीप्त करने से शरीर का पुष्ट होना तथा तेज का बढ़ना वर्णन किया गया है।

वेद ने मनुष्य की आयु सामान्यतः शतवर्ष बताई है, पर मनुष्य इससे पहले ही मृत्यु का ग्रास बन जाता है। इसका कारण अनेक प्रकार के रोग हैं। रोगों से जीवन शक्ति(Vitality) क्षीण होती है और उससे आयु घटती है। रोग दो प्रकार

उत्पन्न होते हैं [१] "दुरित" अर्थात पाप के विचारों वा विजातीय पदार्थों [Fareign matter] के अन्दर जाने से और [२] रोगोत्पादक जीवाणुओं से। सृष्टि नियमों के विरुद्ध कर्म करना पाप है। जो मनुष्य सृष्टि नियमों को तोड़ता है वह अवश्य अनेक रोगों में फंस कर दुःख उठाता है। इसी प्रकार से जो पदार्थ जीर्ण होकर शरीर का अंश नहीं बन जाते वह भी रोग पैदा करते हैं इसलिये वेद में प्रार्थना आई है।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ यजु०अ०३० मं० ३ ॥

हे सविता देव [विश्वानि दुरितानि परासुव] सब दुरितों को दूर कर दीजये और जो भद्र हैं वह हमें प्राप्त कराइये।

अब दुरितों को दूर करने के लिये हर प्रकार की पवित्रता की आवश्यकता है जैसा कि वेद का आदेश है:—

शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः अति क्रामन्तो दुरिता पदानि। शतं हिमाः सर्व वीरा मदेम ॥

अर्थ—हे मनुष्यो तुम (शुचयः) मनसा, वाचा, कर्मणा शुद्ध चित्त (पावकः) अग्नि के समान परम पवित्र, तपस्वी और (शुद्धाः भवन्तः) सब प्रकार से शुद्ध होते हुए [दुरिता पदानि] दुरितों के पदों को [अतिक्रामन्तः] परे हटाओ और [सर्व वीरा] सब वीर्यवान होकर [शतं हिमा मदेम] सौ वर्ष तक आनन्द से जीवन व्यतीत करो।

अब वेद में रोगोत्पादक कीटाणुओं का वर्णन देखिये।

दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरुमतृहम् ।अल्गण्डू न्तसर्वाञ्छलुना-न्क्रिमीन्व चसाजम्भयामसि ।। अथर्व का० २ सू०३१-२।

। अर्थ—[दृष्टम् अदृष्टम् अतृहम्] आंख से देखने वाले और न दीखने वाले दोनों प्रकार के क्रिमियों का मैं नाश करता हूं । [अथो कुरूरम् अतृहम] कुत्सित शब्द करने वाले वा बुरी तरह रुलाने वाले क्रिमियों का मैं नाश करता हूं । (सर्वान) सब प्रकार के [अल्गण्डून्] अति अधिक खाज पैदा करने वाले (शलुनान्) शरीर में प्रवेशकर जाने वाले, वेगवान (क्रिमीन्) रोग कीटों को (वचसा) वेद वाणी में बतलाये उपायों द्वारा वा वचा नाम की औषधि से (जम्भयामसि) विनाश कर देता हूं।

अन्वान्त्र्यं शीर्षन्यऽ मथो पार्ष्टेयं क्रिमीन् ।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ।।

अथर्व० का० ३ सू० ३१-४

अर्थ—[अन्वान्त्र्यं] आंन्तों में उत्पन्न होने वाले, विषूचिका के कीट (शीर्षण्यं] शिरोभाग में उत्पन्न होने वाले दाद, खाज और पनिस रोग के उत्पादक [अथोपार्ष्टेयं क्रमीन्] और पृष्ट वंश के मोहरो में वा पसलियों में उत्पन्न होने वाले नासूर वा राजयक्ष्मा आदि के रोग और कीटों को और इसी प्रकार [अवस्कवं] त्वचा के भीतर घुस जाने वाले दद्रू आदि के कीट [व्यध्वरं] विविध प्रकार से शरीर को खाने वाले या विकृत

मांस को खाने वाले [क्रिमीन] रोग कीटों को [वचसा] वचा औषधि से [जम्भया मसि] विनाश क।

विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमि सारंगमर्जुनम् । शृणामस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥ अथर्व० का० २ सू० ३२-२ ॥

अर्थ—[विश्व रूपं] नाना रूप वाले [चतुरक्षं] चारों ओर आंख वाले [सारंग] श्याम शरीर वाले, [अर्जुनम] श्वेत वर्ण के वा कुटिल गति वाले (क्रिमिं) क्रिमियों को भी [शृणामि] मैं विनाश करता हूं। (अस्य) उसकी (पृष्टी) पसलियों को और [शिरः] उसके सिर को [वृश्चामि] काटता हूं। इस तरह से अनेक प्रकार के रोग कीटों का वेद में वर्णन है इनके अनेक नाम हैं जैसे यातुधान, पिशाच आदि। अनेक स्थलों पर इन्हें रुद्र नाम से पुकारा गया है। क्योंकि यह प्लेग, अतिसार आदि नाना रोगों को उत्पन्न करके लोगों को रुलाते हैं। यह रुद्र पृथ्वी पर,अन्तरिक्ष में तथा समस्त द्यौलोक में रहते हैं। कोई भी जगह इनसे खाली नहीं है। यह'अन्नेषु विविध्यंत पात्रेषु पिवतो जनान" (यजु १६। ६२) खाने के अन्न तथा पीने के पानी द्वारा हमारे शरीर में प्रविष्ट होकर विविध प्रकार की व्याधियां उत्पन्न करते हैं। उन रोग जन्तुओं को नाश करने की अनेक रीतियां वेद में वर्णन की गई हैं किन्तु इनको नष्ट करने की सर्वोत्तम् विधि हवन करना ही है।

सनादग्ने मृणासि यातुधानान्। अथर्व का० ५ सू २६मं० ११

अर्थात् अग्नि सदा से पीडा देने वाले रोग क्रिमियों का विनाश करता आया है।

उप प्रागाद् देवो अग्नी रक्षोहामीव चातनः। दहन्नप द्वयाविनो यातुधानान् किमीदिनः॥ अथर्व का० १सू० २८मं०१

(अमीवचातनः) रोगों को दूर करने वाला और (रक्षोहा) राक्षसों [रोग जन्तुओं] का नाश करने वाला अग्नि देव किमीदिनः यातुधान और द्वयाविन दो मुखें नाम के जन्तुओं को जला देता है। यहां अग्नि को स्पष्ट अमीव—चातन अर्थात् रोग नाशक और रक्षोहा अर्थात् राक्षसों--रोग जन्तुओं का दहन करने वाला कहा गया है।

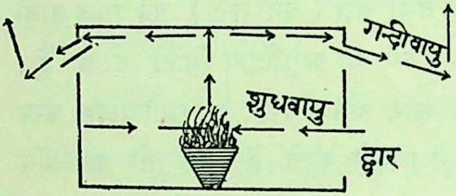
हवन के लाभों का विज्ञान द्वारा स्पष्टीकरण—

ऊपर हमने वेद के प्रमाण से सिद्ध किया है, कि हवन सब प्रकार के रोगों को नष्ट करके दीर्घ जीवन प्रदान कर सकता है। वेद को स्वतः प्रमाण मानने वालों के लिये इतना ही यथेष्ट है। पर आज कल विज्ञान युग है, इसलिये जब तक कोई बात विज्ञान दारा सिद्ध न करदी जाय, अर्थात हमारे पश्चिमी गुरू बात की ताईद न करदें तब तक वह बात मानी नहीं जा सकती। अतः अब हम विज्ञान द्वारा ऊपर की बातों को स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हैं।

स्वास्थ्य के लिये शुद्ध वायु, शुद्ध जल तथा शुद्ध भोजन की आवश्यकता है। हवन करने से पहिले वायु शुद्ध होती है और

फिर उसके संसर्ग से जल तथा अन्न (वनस्पति) की शुद्धि होती रहती है। वायु में अनेक प्रकार की अशुद्धियां मिली होती हैं। हमारे श्वास उच्छ्वास के साथ अनेक प्रकार के रोगोत्पादक कण निकल निकल कर वायु में मिलते रहते हैं। एक तो कर्वनाद्वि औषधि (Carbondioxide) नाम की एक हानि कारक वायु है, दूसरे रोगोत्पादक जीवाणु हैं, जो अनेक रोगियों के श्वास के साथ हर समय निकला करते हैं। मलमूत्र तथा मृतक शरीरों के गलने सड़ने से भी अनेक प्रकार की दूषित हवाएं पैदा होती तथा वायु को ज़हरीली बनाती रहती हैं। प्राकृतिक रीति से इन दोषों का शमन होता रहता है। किन्तु चूंकि हम स्वयं भी वायु को दूषित करते हैं, इस लिये हमारा भी यह कर्तव्य है, कि कृत्रिम उपायों से वायु के इन दोषों को दूर करने का प्रयत्न करें।

खुले मैदानों में जिस प्रकार से वायु का परिवर्तन होता है, बन्द मकान में उसी प्रकार से वायु परिवर्तन नहीं हो सकता। किन्तु किसी न किसी रीति से हमारे मकानों के भीतर की वायु में परिवर्तन अवश्य होना चाहिये। अर्थात अशुद्ध वायु निकल कर बाहर की शुद्ध वायु मकान के अन्दर अवश्य आनी चाहिये। हवन द्वारा यह कार्य भली भांति हो सकता है। जब हम घर के अन्दर अग्नि जलाते हैं, तो उससे वायु गर्म होकर फैलती है, और हलकी होकर ऊपर को उठती है, और फिर बाहर निकल जाती है। उसकी जगह लेने को बाहर से नवीन वायु घर में



प्रवेश करजाती है इस प्रकार से घरकी समस्त गन्दी वायु बाहर निकल कर उस के स्थान से शुद्ध वायु घर में प्रवेश कर जाती है। इस प्रकार से घर की समस्त वायु बाहर निकल कर उसके स्थान में शुद्ध वायु घर में भर जाती है।

केवल इतना ही नहीं, कि हवन से दूषित वायु बाहर निकल कर शुद्ध वायु का प्रवेश हो जाता है, किन्तु हवन से वायु के दोष भी नष्ट हो जाते हैं क्यों कि प्रथम तो मकान में जब यज्ञाग्नि प्रज्वलित का जाती है, तो कमरे की वायु का प्रत्येक कण बारीरसे अग्नि शिखा में से गुजरता है, इससे वायु के अनेक दोष (रोग-कीटाणु आदि) भस्म होकर नष्ट हो जाते हैं। द्वितीय, हवन करते समय अग्नि में घृत और अनेक प्रकार के सुगन्धित, पुष्टि-कारक तथा रोग नाशक द्रव्य डाले जाते हैं, उन के परमाणु छिन्न भिन्न होकर वायु में मिल जाते हैं, और जलते समय उन से अनेक प्रकार के रासायिनक❀ परिवर्तन भी होते हैं जिससे अनेक प्रकार की रोग नाशक गैसें उत्पन्न होकर वायु के दोषों को नष्ट करती हैं।

❀इस रासायनिक परिवर्तनो के विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त करना हो, तो श्री० डा० सत्य प्रकाशजी D.sc. रचित Aguihotra नाम की अंगरेजी पुस्तक को देखना चाहिये।

फ्रांस के विज्ञान वेत्ता अध्यापक ट्रिलवर्ट ने मालूम किया है कि लकड़ी जलाने से फार्मिक आलडी हाईड (Formicaldeh-yde) नाम की एक गैस निकलती है जिसका गुण क्षयी रोग, चेचक, तथा हैजा आदि के कीटाणुओं (Germs) को मार डालना है इस गैस के ४० भाग १०० भाग जल में मिलाकर फार्मेलिन (Foraline) के नाम से बाजारों में बेचते हैं और लोग इसे फिनाइल (Phenol) की तरह काम में लाते हैं। इसी तरह एम० ट्रेल्ड ने मुनक्का किशमिश आदि फलों को, जिनमें शक्कर अधिक होती है जलाकर देखा है और मालूम किया है कि इन चीजों के धुएं से टाईफाईड (Typhoid) के कीटाणु ३० मिनिट में और दूसरे रोगों के कीटाणु घंटे दो घण्टे में नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार से दूसरी औषधियों के जलाने से भी अनेक उत्तम गैसें उत्पन्न होती हैं जो हवाके अनेक दोषों का नाश करती हैं। मद्रास में सेनेटरी कमिश्नर कर्नल किङ्ग आई० एम० एस० ने २५ मार्च सन् १८६८ ई० को ग्रेजुएट विद्यार्थियों के घी, केशर और चावल मिलाकर जलाने का उपदेश किया था। उक्त महाशय के विचार में घी केशर तथा चावल मिला कर जलाने से जो गैसें उत्पन्न होती हैं, वह वायु को शुद्ध करने वाली और रोग कारक जीवाणुओं का विनाश करने वाली है। और प्लेगादि के कीटाणु इन गैसों की उपस्थिति में नष्ट हो जाते हैं। डा० डबल्यू एम० हैफकिन ने ब्यूबोनिक प्लेग (Bubonic Plague) नाम की पुस्तक में उपर्युक्त महाशय के व्याख्यान का वर्णन किया है, और यह भी लिखा है, कि घी जलाने से जो कीटाणु

मर जाते हैं। और हवन का वर्तमान नीति में मेडिकल साइन्स (Madical Since) के अनुकूल है, और हवन करना लाभदायक और बुद्धिमानी का काम है।

जायफल का गर्म करने से एक उड्डनशील [ ] तेल प्राप्त होता है जो बड़ा तीव्र जीवाणु-नाशक (Strong antiseptic) होता है। इलायची, लौंग इत्यादि से भी जा तेल प्राप्त होते हैं, उनमें भी हानिकारक जीवाणुओं के मारने की शक्ति होती है। यह पदार्थ जब हवन में डाले जाते हैं, तो इन उड्डनशील तेलों की वाष्प हवन की गैस में उपस्थित होकर उसे कीटाणुनाशक बना तेती हैं।

हवन गैस द्वारा कुछ वैज्ञानिक परीक्षण प्रो० रामशरण दास जी सक्सेना M.S.C. ने गुरुकुल कांगड़ी में किये थे। उन्होंने १२ कुप्पियां लेकर उनमें दूध, दही, मक्खन, [खांड का घोल] अण्डे की सफेदी और मांस की बोटियां रक्खीं और फिर डाट लगा कर उन सबको क्रिमियों से रहित करने के लिये तीन घन्टे तक जलवाष्प में गर्म किया, फिर कुछ कुप्पियोंमें से हवन की गैस गुजारी और दूसरी वैसी ही कुप्पियों में बाग की वायु गुजार कर सब के मुख पर कड़ी डाट लगादी। इस परीक्षण से जो परिणाम निकले, वह निम्न लिखित कोष्टक से विदित होंगे:-

हवन गैस वाली कुप्पियां—१--सड़ाव देर में आरम्भ हुआ। २—सड़ाव आरम्भ होने पर रासायनिक क्रिया धीरे२ बढ़ी। ३—सड़ाव से उत्पन्न गैसों का दबाव कम था ४—निश्चित समय से सड़ाव कम हुवा

वायु वाली कुप्पियां—१- सड़ाव पहले आरम्भ हुवा। २—सड़ाव आरम्भ होने पर रासायनिक क्रिया एक दम बढ़ गई। ३—सड़ाव से उत्पन्न गैसों का दबाव बहुत अधिक था। ४—निश्चित समय से सड़ाव बहुत अधिक हुआ।

एक और परीक्षण यह किया गया, कि कूप का ताजा जल एक बर्तन में लेकर उस में हवन से उत्पन्न हुई गैसें धीरे२ तीन घन्टे तक गुजारी गई जिससे हवन की गैस के घुलनशील अवयव जल में घुल जावें। फिर वह जल सरकारी अस्पताल के एक योग्य डाक्टर के पास परीक्षणार्थ भेजा गया। उन्होंने उस जल को अपने लोशनों के स्थान पर जख्मों के धोने के कामों में प्रयुक्त किया। उनका कथन है कि पहले दिन जख्मों में मवाद अधिक आया। फिर उस जल में नल का कुछ साफ पानी मिलाकर हलका करके उसका प्रयोग किया तो इस देशी लोशन को विदेशी लोशन के समान ही उपयोगी पाया।

इन परीक्षणों के परिणाम पर अधिक टीका टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है। सभी परीक्षण इस बात को सिद्ध करते हैं, कि हवन गैस में ऐसे पदार्थ उपस्थित होते हैं, जो हानिकारक जीवाणुओं के विनाशक हैं हवन की गैस [जल वाष्प सहित] वायु में मिलकर वायु के रोग क्रिमियों को मार कर उसे शुद्ध कर देती है। और जल में घुल कर उसे क्रिमिनाशक* (Antiseptic) बना देती है। अतः सिद्ध हुआ कि रोगों से

*ऐसा दस्तूर है कि हवन करते समय जो घृत की आहुतियां

बचने के लिये हवन प्रतिदिन दोनों समय करना कितना आवश्यक है। मनुष्य जब रोगी होजाता है, जो अनेक प्रकार से उस के शरीर में औषधि पहुंचाई जाती है। पिसी हुई औषधि को फांकने से, जल में घोल कर वा उबाल कर पीने से, शरीर पर मलने से, वा पिचकारी द्वारा रक्त में मिलाने से, इन सब तरीकों में रोगी को कुछ न कुछ कष्ट अवश्य होता है। पर हवन का तरीका ऐसा है, कि रोगी को प्रतीत भी नहीं होता कि वह औषधि का सेवन कर रहा है। वायु में मिले हुए औषधियों के परमाणु श्वास के साथ भीतर जाते और रक्त में मिलते रहते—ः हैं और रोग के कीटाणुओं को जो बहुधा रक्त में मिले होते हैं नष्ट

दी जाती हैं प्रत्येक आहुति के पश्चात् चमचे में से एक दो बूंद जल पात्र में डालते जाते हैं। इस घृत में भी हवन गैस घुल जाती और उसे क्रिमि नाशक बना देती है। इस घृत को शरीर पर मलने से चमड़े के रोग दूर हो जाते हैं और खुश्की भी नष्ट होती है।

—ःपीसने, उबालने आदि से औषधि के परमाणु इतने सूक्ष्म नहीं होते जितने जलाने से होजाते हैं। और यह मानी हुई बात है कि परमाणु जितने सूक्ष्म होंगे उतना ही शीघ्र प्रभाव दिखावेंगे फिर दूसरे प्रकार से खाने से औषधि पहिले आमाशय में जाती है और पच कर फिर रक्त में मिलती है पर हवन द्वारा तो परमाणु श्वास द्वारा सीधे रक्त में मिल जाते हैं और तत्काल लाभ पहुंचाते हैं।

करके, रोगी को स्वास्थ्य लाभ कराते हैं। फिर औषधि का और प्रकार से सेवन करने से तो केवल सेवन करने वाले एक व्यक्ति को ही लाभ पहुंचता हैं, किन्तु हवन करने से सारा वायु मंडल शुद्ध होजाने से सब प्राणियों को लाभ पहुंचता है। अतः फैलाने वाली वबाओं को दूर करने के लिये हवन से बहतर दूसरा तरीका नहीं हो सकता।

आजकल पश्चिमी डाक्टर भी मकानादि की शुद्धि आग जलाकर तथा औषधियों की धूनी देकर कराते हैं। जैसे गन्धक वा और कई प्रकार की औषधियों को जलाकर जहरीली गैस पैदा करते हैं। यह भी एक प्रकार से हवन विधि ही है, किन्तु इस प्रकार से जो गैसें पैदा होती हैं, वह हानिकारक भी होती हैं और कभी कभी तो थोड़ी सी असावधानी से जान भी खतरे में पड़ जाती है। इसलिए इन वस्तुओं का प्रयोग वैज्ञानिक ही कर सकते हैं। हवन गैस के विश्लेषण से मालूम हुआ है कि उससे क्रियजोट (Cresote) ऐल्डी हाईड (Aldehide) और फीनोल (Phenol) आदि गैसें तथा कृमि नाशक उड्डनशील तेल तो होते हैं, किन्तु वह इतनी मात्रा में होते हैं कि कीटाणुओं को तो मार सकते हैं, पर किसी को हानि नहीं पहुंचाते। अतः हवन करने से जहां वह समस्त लाभ प्राप्त होजाते हैं जो पश्चिमी तरीके से पैदा की हुई विषैली गैसों से होते हैं वहां खतरा भी किसी प्रकार का नहीं होता। हवन को आजकल की वैज्ञानिक रीति पर यह एक भारी विशेषता है।

ऊपर यह तो भली प्रकार से सिद्ध होगया है कि हवन करने से रोगाणुओं को नष्ट करने वाली वायु उत्पन्न होती है। किन्तु लोग प्रश्न करते हैं, कि आग जलने से कार्बन द्वि ओषजिद (Carbou dioxide) गैस भी तो उत्पन्न हुआ करती है और वह स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है अतः हवन करने से भी यह गैस अवश्य उत्पन्न होती होगी और वह स्वास्थ्य को हानि भी अवश्य ही पहुंचायेगी। जो लोग ऐसा प्रश्न किया करते हैं, वह यह नहीं जानते कि कर्बन द्वि ओषजिद गैस कोई जहरीली गैस नहीं हैं। क्योंकि यदि वह विषैली होती, तो संसार में कोई भी प्राणी जीवित न रह सकता। कारण यह है, कि यह गैस हमारे शरीर के प्रत्येक भाग में हर समय उत्पन्न होती रहती है, और रक्त में मिलकर फेफड़ों में पहुंचती है और अपान वायु द्वारा बाहर निकल जाती हैं। रक्त जब फेफड़ों में पहुंचता है, तो वह इस गैस की अधिकता के कारण नीला पड़ जाता है। यदि यह गैस विषैली होती तो उस विष का प्रभाव हमारे शरीर पर अवश्य पड़ता। क्योंकि रक्त इस गैस को लिये हुये शरीर के प्रत्येक रग व रेशों में भ्रमण करता है। पर हम देखते हैं कि हमारे शरीर पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। हवा में भी यह गैस हर समय मौजूद रहती है। यद्यपि इसकी मात्रा प्रायः बहुत थोड़ी अर्थात् दश हजार भागों में केवल ४ भाग होती है। अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि यह बात है तो क्या कारण है कि हवा में इसकी मात्रा कुछ अधिक होजाने से कभी २ हानि देखी

गई है। अर्थात् ऐसा देखा गया है, कि यदि किसी तंग कमरे में बहुत से आदमी बैठे हुए हों, तो कुछ देर में प्राय: सबका सिर घूमने लगता है। और बेहोशी और वमन भी आने लगती हैं। कभी २ ऐसा भी हुआ है कि अधिक सरदी के दिनों में सरदी से बचने के लिये बिचारे गरीब गृहस्थी अपनी तंग कोठरी में सारे दरवाजे और खिड़कियां बन्द करके सोगये और पास ही एक अंगीठी में कोयले भी दहका दिये ताकि कमरा गर्म रहे। किन्तु प्रात: काल क्या देखा कि दिन चढ़ आया है पर सोने वाले अभी उठने में नहीं आते, आवाजों पर आवाज पड़ रही हैं पर भीतर से कोई नहीं बोलता, आखिर किवाड़ उतारे जाते हैं और सबकी लाशें निकाल कर बाहर डाली जातीं हैं। डाक्टर ने बताया कि कारबालिक एसिड गैस के कारण इनकी मृत्यु हुई है। अब यदि यह गैस विषैली नहीं है तो इस प्रकार से मृत्यु क्यों होजाती है ? इसका उत्तर यह है कि वास्तव में कारबालिक ऐसिड गैस के कारण मृत्यु नही होती किन्तु ओषजन (Oxygen) के प्रभाव के कारण मृत्यु होती है अर्थात् जब मनुष्यों के श्वास लेने तथा अग्नि के जलने से सारी ओषजन खर्च हो जाती है तो मृत्यु होजाती है क्योंकि बिना ओषजन के कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता +। इसी प्रकार से नत्रोजन (Nitro-

---

+ डाक्टर जेलेन वाटर एम० ए०, एम० डी०, आर० एच०, एफ० आर० सी० एस० ने भी "हाइजिन" नामी पुस्तक में यही बात लिखी है, जो हमने यहां वर्णन की है।

gen) में भी ओक्सीजन के अभाव के कारण ही मनुष्य मर जाता है, यद्यपि नत्रोजन कोई जहरीली चीज नहीं है।

वैज्ञानिकों ने अनेक परीक्षणों से यह बात सिद्ध करदी है कि कर्वन द्वि ओषजिद गैस कोई हानि कारक पदार्थ नहीं है। किन्तु उसकी उपस्थिति में यदि किसी प्रकार की हानि देखी जाती है तो उसका कारण यह है कि जब इस गैस की मात्रा वायु में अधिक होजाती है तो जितनी यह गैस अधिक होती है उतनी ही ओक्सीजन गैस हमारे हर श्वास में हमें कम प्राप्त होती है। दूसरी बात यह है कि हमारे फेफड़ों से जो अपान वायु निकलती है उसमें फिर फिर श्वास लेने से हमें अवश्य हानि पहुचती है। पर इसका कारण केवल उसमें मिली हुई कार्वन द्वि ओषजिद गैस नहीं है किन्तु कई प्रकार के कीटाणु, दूसरे सेन्द्रिक पदार्थ (Oarganic Matters) तथा वह हानि कारक गैसें हैं, जो उच्छ्वास के साथ वाहर आती हैं। जो कर्वन द्वि ओषजिद कार वालिक ऐसिड गैस अग्नि के जलने से उत्पन्न होती है। उसमें उन समस्त वस्तुओं का अभाव होता है इसलिये वह स्वास्थ्य को हानि नहीं पहुंचा सकती।

यदि यह कहो, कि अग्नि जलाने से वायु में कर्वन द्वि ओषजिद गैस का परिमाण तो अवश्य बढ़ता ही है। और वायु में जितनी मात्रा इस गैस की अधिक होगी उतनी ही ओषजन कम होगी और उस कमी के कारण हमारे स्वास्थ्य को अवश्य हानि पहुंचेगी। तो ऐसा विचार भी अनुचित ही है,

क्योंकि यदि कमरे के समस्त द्वार बन्द करके अग्नि जलाई जाये तो उसके भीतर की परिमित वायु में कर्बन द्वि ओषजिद की मात्रा अधिक होजाने से ओषजन गैस की मात्रा कम रह जायेगी पर यदि कमरे के सब द्वार खुले रक्खे जायें तो जो कर्बन द्वि ओषजिद पैदा होगी वह गर्म होने के कारण ऊपर की खिड़कियों से बाहर निकल जायेगी और समस्त वायु मंडल में फैल जाने से उसका प्रभाव कुछ भी न रहेगा। फिर उसे तो वृक्ष चूस लेंगे, क्योंकि वह वृक्षों का भोजन है, और ओषजन छोड़ देंगे। रही बाकी गैसें जो अनेक औषधियों के जलने से उत्पन्न होती हैं वह वायु में मिलकर समस्त रोगाणुओं का नाश करती रहेंगी। अतः हवन से यदि थोड़ी सी कर्बन द्वि ओष-जिद गैस पैदा होती भी हैं तो वह इतनी थोड़ी होती हैं जिससे कोई हानि नहीं पहुंच सकती और हवन से लाभ अधिक पहुंचता है। इसलिये स्वास्थ्य रक्षा के लिये हवन अवश्य करना ही चाहिये। और यदि कर्बन द्वि ओषजिद के पैदा होने ही से डरते हैं, तब तो एक हवन ही क्या, संसार के वह सब काम जिनसे यह गैस पैदा होती है, बन्द करदो। प्रथम तो भोजन पकाने के लिये दो समय चूल्हा जलाते हो, फिर हलवाइयों की भट्टी हर समय जलती रहती है और मनों लकड़ियां प्रतिदिन फुक जातीं हैं फिर रेलों और दूसरी मिलों के अंजनों से कितनी गैस पैदा होती है। रात को लैम्प जलाकर भी बन्द करदो। पर क्या इन समस्त कामों को बन्द करके दुनियां का काम चल

सकता है और यदि तुम यह सब काम बन्द कर भी दो तब भी क्या कारबन द्वि ओषजिद गैस का बनना बन्द हो जायेगा कदापि नहीं, क्योंकि पृथ्वी पर जो अनन्त जीव रहते हैं उनके सांस लेने से भी यही गैस पैदा होती है। तुम स्वयं भी यह गैस हर समय निकालते रहते हो। तब क्या समस्त जीवों को भी मार दोगे और स्वयं भी श्वास लेना छोड़ दोगे ? कहने का तात्पर्य यह है, कि जब इतने कामों से कर्बन द्वि ओषजिद गैस पैदा होती रहती है, तो फिर केवल हवन से ही क्यों डरते हो। अतः इस प्रकार के प्रश्न व्यर्थ ही हैं और विना सोचे समझे किये जाते हैं।

हवन और वर्षा—केवल इतना ही नहीं कि हवन करने से जल-वायु की शुद्धि होकर स्वास्थ्य लाभ होता, तथा दीर्घ जीवन प्राप्त होता है, किन्तु हवन के और भी लाभ हैं। उनमें से एक यह भी है, कि हवन के द्वारा, आवश्यकता पड़ने पर वर्षा भी की जा सकती है। इस बात को यों समझिये कि नदी, तालाब, झील और समुद्रादि से हर समय जल की वाष्प उठकर वायु में मिलती रहती है। वायु का यह गुण है, कि तापभाप जितना अधिक होता है उतना ही वह अधिक वाष्प अपने अन्दर धारण कर सकती है। जब वायु जल वाष्प से पूर्ण हो जाती है अर्थात् उसमें और वाष्प नहीं समा सकती तो ऐसी वायु को वाष्प पूर्ण वायु कह सकते हैं। यदि उसी वायु का तापभाप (Temperature) और बढ़ जाये, तो फिर वह वायु वाष्प पूर्ण नहीं रहती। क्योंकि उसमें कुछ और वाष्प समाने की गुंजाइश पैदा होजाती

है। पर यदि वाष्प पूर्ण वायु का तापभाप कम होजाये, तो फिर जितनी वाष्प उसके अन्दर समाई हुई है वह उसे भी अपने पेट में नहीं रख सकती किन्तु उसका कुछ भाग शेष विन्दुओं के रूप में उगल देती है।

जब वायु ऊपर को चढ़ती है तो उसका ताप अंश कम हो जाता है। इसलिये यदि वह पहले वाष्प पूर्ण हो, तो अब बहुत सी वाष्प को उगलने लगती है और वह उगली हुई वाष्प वायु में मिले हुए रेणु कणों के ऊपर नन्हींर बूंदों के रूप में प्रगट होती है। यह बूंदें हलकी होने के कारण हवा में तैरती रहती हैं और दूर से बादल के रूप में दिखाई पड़ती है। यदि वायु और ऊपर को चढ़ने लगे तो उस का ताप और कम हो जायेगा और वह उन्हीं रेणुओं पर कुछ जल और उगल देगी जिससे पहली बूंदें और अधिक बड़ी हो जायेंगी। जब यह बूंदें इतनी भारी हो जाती हैं कि हवा में तैर नहीं सकतीं तो नीचे गिरने लगती हैं इसी का नाम वर्षा है। इससे प्रतीत हुआ कि वर्षा के लिये निम्न लिखित बातें आवश्यक हैं:—

१—वायु में जलीय वाष्प का पर्याप्त मात्रा में उपस्थित होना। २—वायु का ऊपर की ओर गति करना।३—वायु में रेणु कणों की उपस्थिति।

अब यह देखना है कि हवन वर्षा लाने में किस प्रकार सहायक हो सकता है।

१—हवन में जो समिधाएं तथा औषधियां जलतीं हैं उन से जल वाष्प भी उत्पन्न होती है अतः वृहत हवन वायु में जलीय वाष्प की वृद्धि करता है।

२—धूम्र के वायु में मिलने से वायु में रेणु कणों की वृद्धि होती है घृत की वाष्प भी ऊपर जाकर जम जाती है और रेणु कणों का काम देती है इन कणों के ऊपर जल बिन्दु जम कर बादल बनाते हैं।

३—हवन करने से वायु गर्म होकर ऊपर चढ़ती है और वायु वायु-मण्डल के ऊपर के परतों को भी ऊपर को धकेलती है इससे न केवल नवीन बादल ही बनते हैं किंतु यदि ऊपर की वायु में बादल बने हुए हों पर बरसते न हों तो वह और ऊपर चढ़ने से बरस जाते हैं।

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट समझ में आगया होगा कि हवन किस प्रकार से वर्षा लाता है। ऐसा ही अनेक वार अनुभव से भी सिद्ध हो चुका है अर्थात यह देखा गया है कि जब किसी स्थान पर किसी साल वर्षा नहीं होती और बादल आ आ कर बिना बरसे चले जाते हैं तो बड़े हवन यज्ञ करने से वर्षा हो जाती है।

हवन और वनस्पति—ऊपर बताया जा चुका है कि वर्षा की प्रत्येक बूंद के भीतर कम से कम एक रेणु कण अवश्य होता है। यह कण पानी के साथ ही नीचे को उतरते हैं और

खेतों में पड़ कर खात का काम देते हैं। हवन करने से वायु में सुगन्धित औषधियों के धूएं के कण तथा घृत के कण भी वायु में मिल जाते हैं इन कणों के ऊपर भी पानी की बूंदें बन जाती हैं और यह समस्त कण वर्षा के साथ खेतों में पड़ जाते हैं और खात बन कर अति स्वास्थ्य दायक अन्न उत्पन्न करते हैं। औषधियों के जलने से अनेक रोग नाशक गैसें उत्पन्न होकर जल में घुल जाती हैं और वह जल खेतों में पड़ कर पौदों को हानि पहुंचाने वाले क्रिमियों को नष्ट करके पौदों को लाभ पहुंचाता है। तथा स्वास्थ्य दायक अन्न उत्पन्न करता है। हवन से कर्बन द्विऔषजिद भी कुछ न कुछ अवश्य पैदा होती है वह पौदों का भोजन है, उसके बिना वनस्पति जीवित नहीं रह सकती। इसे चूस कर पौदे खूब बढ़ते और फलते फूलते हैं, इसे सब ही लोग जानते हैं। अतः सिद्ध है कि हवन से वनस्पति की भी वृद्धि होती है और स्वास्थ्य दायक अन्न उत्पन्न होता है। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि, पर्जन्यादन्नसंभवः ।
यज्ञाद्भवन्ति पर्जन्यो, यज्ञः कर्म समुद्भवः ॥गी० ३।१४।

अर्थात अन्न से सम्पूर्ण भूत उत्पन्न होते हैं। अन्न वर्षा से, वर्षा यज्ञ से होती है और यज्ञ कर्म से होता है।

हवन के कुछ सांकेतिक लाभः—हवन के भौतिक लाभ तो हम संक्षेप से वर्णन कर चुके, अब हम हवन के सांकेतिक

लाभों का वर्णन करते हैं, (१) देखिये हवन के लिये जब हम अग्नि जलाते हैं, तो अग्नि शिखा ऊपर को जाती हुई हमें संकेत द्वारा यह शिक्षा देती है कि हे मनुष्यों ! तुम भी सदा ऊपर को उठा करो-उन्नित किया करो। वेद में लिखा है:—

उदेनमुत्तरं नयाग्ने घृतेनाहुत। अथ० का० ६ सू० ५।१

हे (घृतेन आहुत अग्ने) घृत से आहुति प्राप्त प्रज्वलित अग्ने (एनं) इस मनुष्य को (उत नय) ऊपर उठा (उत्तरं नय) इससे भी अधिक ऊंचाकर अर्थात प्रज्वलित अग्नि को ऊपर उठती हुई देख कर मनुष्यों को उच्च बनने-ऊपर ऊठने की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

प्रकृति के तीन गुण हैं, सत, रज और तप। सतो गुण ऊपर ले जाता है, रजो गुण मध्य में रहता है और तमो गुण नीचे गिरता है। अग्नि सतो गुणी पदार्थ है। अतः मनुष्य उन्नत हो सकता है। अतः मनुष्य को सतो गुण धारण करना चाहिये:—

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठती राजसाः।
जघन्य गुण वृत्तिष्था अधो गच्छन्ति तामसा॥ गी० १४।१८॥

सतो गुण में ठहरने वाले ऊपर को जाते हैं। रजो गुणी लोग बीच में ठहरते हैं। नीच गुण की वृत्ति में ठहरने वाले तमो गुणी लोग नीचे को जाते हैं।

क्यों ?

सत्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमाद मोहो तमसो भवतोऽ ज्ञानमेव च॥ गी० १४।१७

सतो गुण से ज्ञान उत्पन्न होता है और रजो गुण से लोभ। तमो गुण से प्रमाद और मोह होते हैं और ज्ञान भी।

अतः अग्नि जिस प्रकार प्रकाशित होती है उसी प्रकार से तुम भी अज्ञान का प्रकाश ग्रहण करो।

(२) काला कलूटा धूआं भी अग्नि के साथ उत्पन्न होता है, जो तमो गुणी पदार्थ है। अग्नि उसे भी अपने सिर पर रखती है, और ऊपर ले जाने का प्रयत्न करती है यद्यपि वह अपने स्वाभाविक गुणों से फिर नीचे गिर जाता है। इससे हमें यह पाठ पढ़ना चाहिये, कि मनुष्य को नीच पुरुषों से घृणा नहीं करनी चाहिये, किन्तु उन्हे भी उन्नत करने का प्रयत्न करना चाहिये। इसी से महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने भी हमें बतलाया है। कि:—

"प्रत्येक को अपनी उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सब की उन्निति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।" (आर्य समाज का निमम सं० ६)

३—हम अग्नि में समिधाएं, घृत तथा सामिग्री डालते हैं। यह सब पदार्थ स्वयं भस्म होकर हमें प्रकाश देते, तथा जल वायु को शुद्ध करके हमें दीर्घ आयु प्रदान करते हैं। इसी प्रकार से हमें भी अपना नाश करके भी दूसरों को प्रकाश देना चाहिये। दूसरे यह भी सोचना चाहिये, कि जिस प्रकार से यह सब पदार्थ भस्म होकर नाश को प्राप्त हो रहे हैं उसी प्रकार हमें भी एक दिन मृत्यु के मुख में पड़ कर नाश हो जाना है इसलिये:—

आयुर्यज्ञेन कल्पताम । यजु० ६।११।

हमें अपनी समस्त आयु यज्ञ--श्रेष्ठ तम कर्मों के अर्पण कर देनी चाहिये । और पाप कर्मों से बचना चाहिये ।

४—हम संसार में प्रत्येक काम स्वार्थ के लिये करते हैं अर्थात हमेशा यह विचारते हैं कि इस काम से हमें क्या लाभ होगा। यह हवन एक ऐसा कर्म है, जो हमें स्वार्थ त्याग का पाठ पढ़ाता है। कारण यह है, कि हवन की वायु को हम अपने ही घर में रोक कर नहीं रख सकते। वह सारे वायु-मण्डल में फैल कर जीवमात्र को लाभ पहुंचाती है। वेद में लिखा है:—

अग्निश्च हव्य वाहनो भवतां दाशुषेमम ।

अथर्व०का०७सू०२१ मं०१

(हव्य वाहनो अग्नि) हवनीय पदार्थों को लेजाने वाला अग्नि (मम दाशुषे भवतो) हमारे दाता के लिए आदर्श होवे।

देखो अग्नि में जो पदार्थ डाले जाते हैं, वह उन्हें सूक्ष्म करके वायु को दे देता है, वायु जल को, जल वनस्पति को और वनस्पति फिर हमको वापिस लौटा देता है। यह दाता का आदर्श है। अर्थात जो पदार्थ उसे प्राप्त हो, वह उसे दूसरों को देदेवें। सब का सब स्वयं न भोग ले। अर्थात—

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा । यजु० ४०।१

उसे त्याग न करता हुआ--दूसरों को देता हुआ स्वयं भी भोगे।

इस प्रकार से हवन हमें संकेतों द्वारा दिन में दो बार आदर्श जीवन का पाठ पढ़ाता है। क्या यह कुछ कम लाभ है ?

खर्च का प्रश्न:—लोग कहते हैं "हवन लाभ कारी तो है पर उसके लिये पैसे कहां से लाएं। हमें खाने को तो घृत मिलता ही नहीं आप घृत जलाने को कहते हैं। पिछले समय में जब भारत वर्ष बहुत धनी देश था और यहां पर दूध की गंगा बहा करती थी, तब प्रति दिन हवन करना आसान था पर इस समय तो असम्भव ही है।" यह उन का भ्रम है। हवन करने में कुछ भी अधिक खर्च नहीं होता स्वामी जी ने पंच महायज्ञ विधि तथा संस्कार विधि में प्रातः सायं हवन के लिये जो विधि बतलाई है उसके अनुसार केवल ६ आहुतियां घृत की तथा ६ आहुतियां सामिग्री की काफी है। इस प्रकार से दोनों समय में १८ आहुति घृत की और १८ समिग्री की बनती है। घृत की आहुतियों के लिये चमचे का अग्र भाग अंगूठे के बराबर बताया है जिसमें पिघला हुवा घृत दो माशे से अधिक नहीं लगता। १८ आहुतियों में ३६ माशे अर्थात् कुल ३ तोले और सामिग्री में मिलाकर ४ तोले घृत प्रति दिन चाहिये। अर्थात २४ छटाक घृत एक मास के लिये काफी है जिसका मूल्य १।।)समझ लो ।।) में समिधाएं तथा सामिग्री का काम चल सकता है अतः कुल २) मासिक का खर्च है पर यदि मनुष्य बीमार हो जाये तो डाक्टर एक बार दर्वाजा झांक कर ही २) फीस ले जाता है और दवा का मूल्य अलग रहा। इन तमाम बातों पर

विचार किया जाय तो हवन में कुछ भी खर्च नहीं पड़ता। रहा समय-का-प्रश्न सो अधिक से अधिक १५ मिनिट में हवन का कार्य समाप्त हो सकता है अर्थात दिन भर में आध घन्टा। और इतने आवश्यक कार्य के लिये आध घन्टा प्रतिदिन देना कोई कठिन नहीं है पर बात यह कि हमारे मन में श्रद्धा होनी चाहिये क्योंकि बिना श्रद्धा के कोई भी कार्य नहीं हो सकता।

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यं दिनं परि। श्रद्धां सूर्यस्य निमुचि श्रद्धे श्रद्धापयेहनः। ऋ० १०। १५१। ६।

अर्थ—प्रातः काल श्रद्धा से (सन्ध्या अग्निहोत्रादि) कर्म करते हैं, और उसी प्रकार मध्य दिन में (सांसारिक कार्य) करते हैं और सूर्य के अस्त होने के समय में भी श्रद्धा से ईश्वर की भक्ति करते हैं। हे श्रद्धे हम सबको श्रद्धा युक्त करो।

लोगों में श्रद्धा हो तो कार्य कठिन नहीं है। पर कमी तो श्रद्धा की है। गरीबों को जाने दो क्या अमीर लोग प्रतिदिन हवन करते हैं ? फिर खर्च का प्रश्न तो फिजूल ही हुवा ना। यदि अमीर ही प्रतिदिन दो बार हवन कर लिया करें तो संसार के सारे रोग दूर हो जायें। पर करें कैसे बिना श्रद्धा के न उनके पास इस कार्य के लिये पैसा है न समय है।

एक समय महाराज जनक की सभा लग रहीं थी याज्ञवल्क्य मुनि भी वहां आ पहुंचे राजा ने पूछाः—

हे याज्ञवल्क्य ! तुम जानते हो अग्नि होत्र का स्वरूप क्या है ?

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, हां महाराज मैं जानता हूं। (पयः एव, इति) महाराज दूध ही अग्नि होत्र है। अर्थात् केवल दूध द्वारा अग्निहोत्र सर्वोत्तम प्रकार से किया जा सकता है।

राजा—यदि दूध न हो तो किस चीज से अग्नि होत्र करोगे?

याज्ञवल्क्य—महाराज चावल और जौ से हवन किया जा सकता है।

राजा:—और यदि चावल और जौ भी न हो, तब ?

याज्ञ० –महाराज दूसरी औषधियों से।

राजा:—और यदि दूसरी औषधियां भी न हों, तो ?

याज्ञ०—महाराज जंगली औषधियों से हवन किया जा सकता है।

इस प्रकार से संवाद चलता है और अन्त में याज्ञवल्क्य बतलाता है कि यदि कुछ भी न हो तो "सत्यं श्रद्धायामिति" श्रद्धा की आग में सत्य की आहुति से ही हवन करना चाहिये।

यह सुनकर, महाराज ने प्रसन्न होकर कहा—

वेत्थाग्नि होत्रं याज्ञवल्क्य धेनुशतं ददामीति।

हे याज्ञवल्क्य तुम अग्नि होत्र को जानते हो, इसलिये मैं तुम्हें सौ गौ देता हूं

पाठक इस सम्वाद से आप भी अग्नि होत्र के स्वरूप को समझने का प्रयत्न करें, और जो पदार्थ भी उपस्थित हो उसीसे हवन कर लिया करें।

अन्त में केवल इतना ही कहना है, कि बिना श्रद्धा* के कोई भी काम नहीं-हुआ करता। अतः श्रद्धा को धारण करो और आज ही से प्रति दिन हवन करना आरम्भ करदें।

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धयाहूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥ ऋ० १०।१५१।१

(श्रद्धया) श्रद्धा से (अग्निः समिध्यते) अग्नि प्रदीप्त होती है, और (श्रद्धया हविः हूयते) श्रद्धा से आहुति दी जाती है। (भगस्य मूर्धनि) ऐश्वय के मूर्द्धा स्थान में (श्रद्धां वचसा वेद यामसि) श्रद्धा को वेद वाणी द्वारा बतलाते हैं।

हवन यज्ञ वा देवयज्ञ के सम्बन्ध में जो कुछ भी वक्तव्य था वह हम इस भूमिका में वर्णन कर चुके। अब दैनिक हवन यज्ञ की प्रत्येक क्रिया तथा मन्त्रों की व्याख्या करेंगे, आशा है पाठक विचार पूर्वक पढ़ कर लाभ उठायेंगे।

सेवक
नत्थनलाल आर्य,
जगाधरी

*श्रत् सत्यं दधातीति श्रद्धा अर्थात् सत्य को धारण करने वाली श्रद्धा है। अर्थात पहले सत्य का ज्ञान प्राप्त करो फिर उसे धारण करलो।

(१) आचमन मन्त्रः

सब से पहिले निम्न लिखित वाक्यों को बोल के तीन आचमन करे।

ओम् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥१॥

अर्थ—(अमृत) हे अमृत तू (उप--स्तरणं) नीचे का बिछौना (असि) है। (सु+ आहा) यह ठीक कहा गया है ।१।

ओम् अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२॥

अर्थ—हे अमृत तू (अपिधानं) ऊपर का ओठना (असि) है (स्वाहा) यह ठीक कहा गया है ॥२॥

ओम् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥३॥

इस से तीसरा, तैतरीय आरण्यक प्र० १०। अनु० ३२,३५ ॥

अर्थ—(मयि) मुझ में (सत्यं) सत्य, (यशः) यश-कीर्ति विस्तार, (श्रीः) शोभा--कान्ति (श्रीः) लक्ष्मी (श्रयतां) स्थित हो ॥३

व्याख्या

आचमन की आवश्यकता—आचमन के सम्बन्ध में हम 'सन्ध्या प्रदीपिका' में बहुत कुछ लिख चुके हैं। उन सब बातों का यहां दोहराना आवश्यक प्रतीत नहीं होता। किन्तु इतना कहना जरूरी है, कि प्रत्येक यज्ञ के आरम्भ करने से पहिले आचमन करना अति आवश्यक है। क्योंकि उस से आलस्य दूर होकर कर्म करने के लिए सुफूर्त्ति पैदा होती है, कण्ठ का कफ दूर होकर कण्ठ कोमल और मधुर हो जाता है,और उच्चारण शुद्ध होता है। इस के अतिरिक्त मन में शान्ति और पवित्रता भी आती है। जिसके बिना कोई भी शुभ कर्म किया नहीं जा सकता।

मानसिक विचार—आचमन करने की रीति भी हम 'सन्ध्या प्रदीपिका' में लिख चुके हैं। उसी रीति से यहां भी आचमन करना योग्य है। पर यहां मानसिक विचारों में कुछ परिवर्तन हो गया है। कारण यह है, कि सन्ध्या ध्यान का विषय है, जिसके लिये मन का शान्त होना आवश्यक है। इसी लिये सन्ध्या में आचमन के समय जो मन्त्र बोला जाता है, उस में जल को मन की शान्ति का साधन बतलाया गया है। किन्तु हवन यज्ञ स्वास्थ्य और दीर्घ आयु प्राप्ति का हेतु है, इस लिये यहां आचमन करते हुये मन में ऐसी कल्पना करने का विधान है, मानो हम अमृत का पान कर रहे हैं।

अमृत का अर्थ जल—(१) पहिले वाक्यों में कहा है अमृत "उपस्तरण" अर्थात् नीचे की चादर है। दूसरे में कहा है अमृत "अपिधान" अर्थात् ऊपर का ओढ़ना है। अमृत नाम जल का है क्योंकि वह (अ+मृत) मृत्यु रहित है, जल अपना रूप बदलता रहा है। कभी वह हिम के रूप में होता है, कभी जलके रूप में और कभी वाष्प का रूप धारण कर लेता है। किन्तु प्रत्येक अवस्था में उसका प्रत्येक परमाणु जल परमाणु है। जल का नाश कभी नहीं होता, इस लिये जल अमृत है। इसके अतिरिक्त जल समस्त जीवों को मृत्यु से बचाता है। अर्थात् वह जीवन का हेतु है, इस लिये भी जल अमृत है। वेद में लिखा है:—

अप्स्वऽ न्तरमृतमप्सु भेषजम्। अथर्व १।४।४

अर्थ—(अप्सु अन्तः) जलों के बीच में (अमृतम्) अमृत-अमर जीवन शक्ति है, (अप्सु) जलों में (भेषजम्) औषधि-रोगनाशक सामर्थ्य है।

अप्सुविश्वानि भेषजा। ऋग० १।६

अर्थ -(अप्सु) जलों में (विश्वानि) सब [भेषजा] दवाइयां है।

ऐसा अमृत और औषधि रूपी जल हमारे ऊपर और नीचे है। हम अमृत से घिरे हुए हैं। उसी अमृत का हम पान करते, आचमन करते समय यदि हमारे मन में ऐसा भाव हो कि हम अमृत और औषधि का पान कर रहे हैं, तो हम अवश्यनिरोग रह

कर दीर्घ आयु को प्राप्त करेंगे। इस में सन्देह नहीं हो सकता।

अमृत का अर्थ परमात्मा:— (२) अमृत शब्द का दूसरा अर्थ परमात्मा है। क्योंकि परमात्मा स्वयं अमर है और जो मनुष्य उनकी शरण में जाता है उसे भी अमर कर देते हैं। वेद में लिखा है:—

"यस्यच्छाया अमृतं" उस प्रभु की छाया-आश्रय अमृत है। इसी लिये जीवात्मा को अमृत पुत्र कहा जाता है।

परमात्मा हमारा ओढ़ना और बिछौना है, यह कितना उत्तम विचार है। इसका तात्पर्य यह है, कि परमात्मा हमारे ऊपर, नीचे,बाए, दायें हर तरफ मौजूद है। और हम उसके बीच में इस प्रकार से वास करते हैं, जिस प्रकार से माता के आंचल में बालक सो रहा होता है। जब उस प्रभु ने जिसके भय से मौत* भी कांपती है, हमें अपनी दया के आंचल में इस प्रकार से ढका हुआ है, तो फिर मृत्यु से हमें भय क्यों हों ?

संसार का प्रत्येक पदार्थ अमृत रूप है:— [३] विचार के देखा जाये तो संसार की प्रत्येक वस्तु अमृत रूप है। और हम अमृत के तालाब में पड़े हुए मानों सदा अमृत का पान करते रहते हैं। देखो ! 'वायु' अमृत है, 'जल' अमृत है। 'प्रकाश' अमृत है, 'अन्न' अमृत है, और समस्त

---

* भयादस्याग्निस्तपति भयात् तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंञ्चमः॥

औषधियां अमृत हैं, क्योंकि, यह समस्त वस्तुएं हमारे जीवन का हेतु हैं। हम हर समय अमृतों से आच्छादित रहते हैं। पर हम अपने अज्ञान के कारण अमृतों को भी विषों से परिणत कर देते हैं, और मृत्यु के जाल में फंस* जाते हैं।

जीवन का उद्देश्य क्या है?:—अमृत का पान करने से तुम दीर्घ आयु प्राप्त कर सकते हो, पर दीर्घ आयु करने का उद्देश्य क्या है? यह जानना अति आवश्यक है। क्योंकि बिना उद्देश्य जीवन निरर्थक है। तीसरे मन्त्र में बतलाया गया है, कि मनुष्य को सत्य, यश और श्री की प्राप्ति करनी चाहिये। यही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है।

सत्य की महिमा:—सत्य का स्थान वैदिक धर्म में ऊंचा है इसी लिये मनु जी महाराज कहते हैं:—

सत्यं ब्रूयात—नानृतं ब्रूयात। मनु० ४।१३८

अर्थ—हे मनुष्यो! तुम सदा सत्य ही बोला करो असत्य-झूठ कभी न बोलो।

धर्मः सत्येन वर्द्धते। मनु०

अर्थ—सत्य बोलने से धर्म बढ़ता है।

---

*हमारी तो यह अवस्था है:—अपांमध्ये तस्थि वान्स तृष्णाऽविदत्। ऋ० ७, ८९-४ और इस मन्त्र का भाव किसी हिन्दी कवि ने इन शब्दों में वर्णन किया है? पानी में मीन पियासी—मोहे देखत आवे हांसी।"

इसी प्रकार से व्यास मुनि महाभारत में कहते हैं:—

नास्ति सत्यात् परो धर्मः । महा० शां०

सत्यंहि परमं बलं । महा० अनु०

अर्थ—सत्य से परे कोई धर्म नहीं। निश्चय सत्य परम बल हैं।

सत्यमेव जयति नानृतं।

अर्थ—सत्य ही की जय होती है असत्य की नहीं। इस प्रकार वेद में लिखा है:—

ऋतावान ऋत जाता ऋतावृधो घोरासो अनृत द्विषः।
ऋ० ७।६६।१३

अर्थ—हे मनुष्य ! तू सत्य का पक्षपाती हो। तेरा जीवन सत्य को बढ़ाने वाला हो और असत्य का विरोध करने के लिये अतिशय घोर रूप धारण कर।

इन वचनों से सत्य की महिमा प्रगट है। सत्य ही यज्ञ का प्राण है। क्योंकि विना सत्य के कोई यज्ञ (संगठन) सुरक्षित नहीं रह सकता इसलिये यहां सत्य की कामना की गई है।

यश—सत्य के पश्चात यश-कीर्ति की कामना की गई है अर्थात सत्य का पालन करते हुए मनुष्य को यश लाभ करना चाहिये।

वेद कहता है:—"सत्यं यज्ञों यशो वृहत" अर्थात सत्य ही (वृहत यज्ञः) बड़ा यज्ञ, और (वृहत यशः) महान यश है।

"यश विस्तारे" यश का अर्थ विस्तार अर्थात फैलना भी है। यज्ञ-संगठन जितना विस्तृत होगा उतनी ही उसकी शक्ति अधिक होगी। और विना सत्य व्यवहार के यज्ञ संगठन का (यश) विस्तार असम्भव है।

श्री—"श्री" का अर्थ १—कान्ति और २—लक्ष्मी है। ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य के नियमों का पालन करने से शरीर में कान्ति-शोभा आती है। जल से भी मनुष्य के शरीर की शोभा बढ़ती है। वनस्पतियों में भी जल की ही शोभा है। इसीलिये शोभायमान वस्तु को पारसी भाषा में "आवदार" कहते हैं। "आब" का अर्थ जल तथा कान्ति-शोभा-चमक दमक ऐसा विचारना चाहिये, मानो वह कांति को प्राप्त कर रहा है। शराब, चाय आदि से कांति नष्ट होती है।

२—लक्ष्मी—धन के सम्बन्ध में वेद कहता है:—

आयुष्यं वर्चस्य ṁ रायस्पोषमौद्भिदम् ।
इदं ṁ हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादुमाम्। यजु० ३४। ५०

अर्थ—(इदं) यह (हिरण्यं) सुवर्ण-धन जो (आयुष्यम्) दीर्घ आयु देने वाला (वर्चस्यम्) तेज को बढ़ाने वाला (रायः पोषम्) राजत्व पोषण करने वाला (औद्भिदं) दुःखों और शत्रुओं को उखाड़ फेंकने में समर्थ (वर्चस्वत) और शक्ति देने वाला है, (जैत्राय) विजय की प्राप्ति के लिये (माम) मुझे (आविशतात्) प्राप्त होवे।

इस मन्त्र में श्री-धन का महत्व दिखलाया गया है। और यह भी बतलाया गया है, कि इन बातों की प्राप्ति के लिये ही धन प्राप्त करना चाहिये। दबा कर रखने के लिये नहीं, "बराय निहादन चे संगो चे ज़र"। अर्थात दबा कर रखने को तो पत्थर तथा स्वर्ण समान ही हैं।

सत्य की मुख्यता—'सत्यं' पहले आया है 'यश' उसके पीछे, और 'श्री' सबसे पीछे। अतः सत्य मुख्य होने से उसे सब से पहले ग्रहण करना चाहिये। और आवश्यकता पड़ जावे तो सत्य की रक्षा के लिये यश और श्री को भी न्योछावर कर देना चाहिये। जैसा कि वेद में लिखा है:—

सत्याय च तपसे देवताभ्यो निधिं शेवधिं परि दद्म एतम्।

अथर्व० १२।३।४६

अर्थ—सत्य, तप और देवताओं के लिये यह बड़ा द्रव्य निधि सब प्रकार से अर्पण करते हैं।

किंतु हम पहले श्री को ग्रहण करते हैं। फिर यश को और सब से पीछे सत्य को। और श्री के लिये सत्य और यश दोनों को न्योछावर कर देते हैं।

'सत्य' द्वारा ही 'यश' और 'श्री' प्राप्त करनी चाहिये, 'असत्य' और 'अधर्म' से नहीं। अर्थात 'सत्य से "लोकेशना" और 'वित्तेशना' को दबाना चाहिये।

पस मन में यह भाव रखते हुए, कि मैं अ त से घिरा हुआ हूं और अमृत का पान कर रहा हूं तथा मेरे जीवन का उद्देश्य सत्य, यश और श्री का धारण करना है, तीन आचमन करने चाहियें। इन मानसिक विचारों से आयु बढ़ेगी और जीवन सत्य मय बन जायेगा।

(२) अंग स्पर्श:

आचमन के पश्चात् निम्न लिखित वाक्यों को बोल कर अंग स्पर्श करें।

ओं वाङ् मा ऽ आस्ये ऽस्तु ॥ १॥ इससे मुख,
ओं नसोर्मे प्राणो ऽस्तु ॥२॥ इससे नासिका के दोनों छिद्रों,
ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥३॥ इससे दोनों आंखों,
ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥४॥ इससे दोनों कानों,
ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥५॥ इससे दोनों बाहुओं,
ओं ऊर्वोर्मे ओजो ऽस्तु ॥६॥ इससे दोनों जंघाओं और,
ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सहसन्तु ॥७॥ इससे समस्त शरीर पर जल छिड़के। पारस्कर गृह्यसूत्र १। ३। २५॥

अर्थ—हे (ओं) रक्षक परमात्मन! (मे) मेरे (आस्ये) मुख में पूर्ण आयु तक (वाक) वक्तृत्व शक्ति-वाणी (अस्तु) बनी रहे ॥१॥

हे परमेश्वर ! मेरे (नसोः) दोनों नासिकाओं में पूर्ण आयु तक (प्राणः) प्राण वायु (अस्तु) चलती रहे ॥२॥

हे प्रभु ! मेरे (अक्ष्णोः) दोनों नेत्रों में पूर्ण आयु तक (चक्षुः) देखने की शक्ति (अस्तु) स्थिर रहे ॥३॥

हे प्रभु ! मेरे (कर्णयोः) दोनों कानों में पूर्ण आयु तक (श्रोतम) श्रवण शक्ति (अस्तु) बनी रहे ॥४॥

हे परमेश्वर ! मेरे (बाह्वोः) दोनों भुजाओं में पूर्ण आयु तक (बलम) बल (अस्तु) स्थिर रहे ॥५॥

हे परमात्मन ! मेरे (ऊर्वोः) दोनों जंघाओं में पूर्ण आयु तक (ओजः) वेग-चलने को शक्ति (अस्तु) रहे ॥६॥

हे प्रभु ! मेरे (तनूः) शरीर में (अरिष्टानि अंगानि) हृष्ट पुष्ट अंग (मे तन्वा) मेरे शरीर के (सह सन्तु) साथ रहें ॥७॥

व्याख्या

शारीरिक उन्नति वैदिक धर्म का एक आवश्यक अंग है, क्योंकि इसके बिना धर्म कार्य भी नहीं हो सकते। अतः इन वाक्यों में अंगों को हृष्ट पुष्ट और बलवान बनाये रखने की शिक्षा दी गई है।

सन्ध्या के मन्त्र "तच्चक्षुर्देवहितं" में शतवर्ष अथवा उससे भी अधिक समय तक देखने, सुनने, बोलने तथा अदीन रहकर जीने की प्रार्थना की गई है। यहां भी वही विचार दूसरे शब्दों में दोहराये गये हैं। जैसा कि निम्न लिखित मन्त्रों से विदित होगा।

अंग स्पर्श—

वाङ्म ऽ आस्ये ऽस्तु, नसोर्मे प्राणो ऽस्तु अक्ष्णोर्मे चक्षु-रस्तु, कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु, वाह्वोर्मे बलमस्तु, ऊर्वोर्मे ऽ ओजो ऽस्तु, अरिष्टान मे अंगानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु।

सन्ध्या का मन्त्र—

प्रब्रवाम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं, पश्येम शरदः शतं, श्रृणुयाम शरदः शतं, अदीनास्याम शरदः शतं,

यद्यपि इन वाक्यों में ऐसा कोई शब्द नहीं है जिसका अर्थ "पूर्ण आयु तक" ऐसा हो किन्तु संध्या के इस मन्त्र के साथ मीलान करने से विदित होता है कि वही विचार इन वाक्यों में दोहराये गये हैं। इसलिये इन वाक्यों का तात्पर्य भी पूर्ण आयु तक बल प्राप्त करना ही है। इसके अतिरिक्त, संसार में ऐसा कौन मनुष्य हो सकता है, जो यह कामना करे, कि उसके अंगों की शक्ति मरणपर्यन्त न रह कर कुछ पहिले ही नष्ट हो जाय।

इस विषय में वेद की शिक्षा देखिये:—

वाङ्म आसन्नसोः प्राणश्च क्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः। अपलिता केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वो र्बलम् ॥ १ ॥
ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः प्रतिष्ठा। अरिष्टानि मे सर्वात्मानि भृष्टः ॥२॥ तनूस्तन्वा मे सहेदतः सर्वमायुर-

शीय। स्योनं मे सीद पुरः पृनस्व पवमानः स्वर्गे ॥ १ ॥

अथर्व० कां १९ सू० ६०, ६१

अर्थ- मेरे मुख में वाक शक्ति, दोनो नासिकाओं में प्राण शक्ति,दोनों आंखों में दर्शन शक्ति और दोनों कानों में श्रवण शक्ति उत्तम प्रकार से बनी रहे। मेरे बाल श्वेत न हों। मेरे दांत मलीन न रहें वा न गिरें। और मेरी दोनों भुजाओं में बल बना रहे। मेरे उरू (गोड़ों) में ओज (बल), जंघाओं में वेग और पैरों में स्थिरता रहे। और मेरे सब अंग, हृष्ट पुष्ट होवें। मेरा आत्मा सदा उत्साह पूर्ण रहे। मेरे शरीर के सब अवयव उत्तम अवस्था में रहें। मुझमें सहन शक्ति हो। मेरे दांत बलवान होवें और मैं पूर्ण आयु को प्राप्त करूं। मुझे सुख प्राप्त होवे। मैं पूर्णत्व को प्राप्त करूं और शुद्ध पवित्र होकर स्वर्ग-सुखमय लोक में प्रसन्नता से रहूं।

इन मन्त्रों में "सर्वं आयुः" शब्द स्पष्ट इस आशय को प्रगट करते हैं कि मेरे अंगों की शक्ति आयु भर बनी रहे। अब निम्न लिखित मन्त्र पर विचार कीजिये।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय। आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्ति यजमानं च वर्धय॥ अथर्व० का० १९ सू० ६३

अर्थ—(ब्रह्मणस्पते) हे ज्ञान के स्वामिन ! (उत्तिष्ठ) उठो और (देवान बोधय) विद्वानों में बोध उत्पन्न करो। तथा (यज्ञेन) यज्ञ द्वारा (यजमानं) यजमान की आयु, जीवन, सन्तति, पशु, कीर्ति यश तथा बल बढ़ाओ।

इस मन्त्र में यह बतलाया गया है कि विद्वानों को इस बात का बोध होना चाहिये कि यज्ञ द्वारा आयु आदि बढ़ सकती है।

इसी प्रकार और भी देखिये:—

वर्च आधेहि मे तन्वां ३ सह आजो वयो वलम्।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रतिगृह्णामि शत शारदाय ॥ अथर्व० का० १९ सू ३७ म० ॥

अर्थ—हे अग्नि देव! (मे तन्वां) मेरे शरीर में (वर्चः) तेज, (सहः) सहन शक्ति, (ओजः) पराक्रम, (वयः) जीवन शक्ति और (बलं) बल (आधेहि] धारण करो (इन्द्रियाय) इन्द्रियों की शक्ति प्राप्ति के लिये, (कर्मणे वीयार्य) कर्म करने का पराक्रम प्राप्त करने के लिये और [शत शारदाय] सौ वर्ष क आयु की प्राप्ति के लिये (त्वा प्रति गृह्णामि) मैं तेरा स्वीकार करता हूं।

अतः वेद का यह आदेश है, कि प्रत्येक मनुष्य को यह कामना करनी चाहिये कि उस का शरीर तथा इन्द्रियां सुदृढ़ तथा बलवान हों, और वह पूरी १०० वर्ष की (वा उससे भी अधिक) आयु प्राप्त करे। तथा ब्रह्मचर्य व्यायाम और विशेष कर हवन यज्ञ इस कामना की पूर्ति का साधन है।

अङ्ग स्पर्श की विधिः—अंग स्पर्श की विधि यह है, बायें हाथ की हथेली पर थोड़ा जल लेकर, दायें हाथ की दो

उंगलियों (बीच की और अनामिका) द्वारा जिस २ अङ्ग का नाम आता जाये उस पर जल लगाते जायें। जिन इन्द्रियों के दो भाग हैं, जैसे आंख, कान आदि, उनमें पहिले दक्षिण भाग को और पीछे बायें भाग को स्पर्श किया जावे।

ऐसा करने से आलस्य दूर होकर शरीर में स्फूर्ति आती है, और शीतल जल के स्पर्श से रुधिर की गति तीव्र हो जाती है, जिससे निर्मलता तथा नीरोगता प्राप्त होकर बल की वृद्धि होती है।

मानसिक क्रिया-इच्छा शक्ति का प्रभाव:—जिस जिस अङ्ग को स्पर्श किया जाये, अपने मन की वृतियों को भी उसी २ अङ्ग की तरफ ले जाना चाहिये। तभी पूरा लाभ होता है, अन्यथा नहीं। क्यों कि यदि किसी काम में मन न लगा हो, तो केवल बाहरी अङ्गों से वह क्रिया निरर्थक होती है मन में जैसे भाव होते हैं, वैसा ही प्रभाव हमारे शरीर पर पड़ता है। तभी वेद में कहा है:—

"तन्मे मनः शिव संकल्प मस्तु" अर्थात मेरे मन में शुभ संकल्प हो। इस विषय में विकास वाद के आचार्य डार्विन साहब का मत देखने योग्य है:—

"प्रत्येक मानसिक अवस्था का हमारे शरीर पर कुछ न कुछ परिणाम होता है। और हमारी वह मानसिक अवस्था हमारे किसी न किसी अंग पर प्रभाव डालकर उसमें किसी न किसी

प्रकार का विकार उत्पन्न करतीं है। अर्थात् यदि हम अपने मन में कोई भाव लावें तो उसका हमारी आकृति आदि पर भी उसी के अनुसार कुछ प्रभाव पड़ता है। .... हमारे मनकी जैसी अवस्था होती है, वैसी ही हमारी शारीरिक अवस्था भी हो जाती है। दूषित भावों से आकृति भी दूषित होजाती है, और उत्तम भावों से आकृति भी सौम्य तथा सुन्दर होजाती है। " (सामर्थ्य, समृद्धि और शान्ति (पृष्ठ १८२) डा० ओरिसन स्वेट मार्डेन लिखते हैं:—

"यदि हम अपने मनमें अच्छी तरह बिठा लें, कि हम सदा जवान बने रहेंगे और कभी बूढ़े न होंगे तो फिर हम शरीर से भी सदा जवान ही बने रहेंगे। मनमें इस प्रकार की दृढ़ धारणा होते ही मानों हम वृद्ध अवस्था पर विजय प्राप्त कर लेंगे। सब लोगों को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये, कि अपनी अवस्था के सम्बन्ध में हमारे मनमें जो विचार होंगे उसीके लक्षण हमारे शरीर पर दिखाई देंगे। हमारी अवस्था चाहे कितनी ही अधिक क्यों न हो जाय, परन्तु यदि चाहे तो उस समय भी हम जवान ही बने रहेंगे।" (सामर्थ्य, समृद्धि और शान्ति पृ० १३१)।

इन उद्धरणों से स्पष्ट हो गया होगा, कि हमारे मानसिक विचारों का हमारे शरीर पर कैसा प्रभाव पड़ता है। जब हम प्रति दिन अपने मनमें यह दृढ़ भावना उत्पन्न करें कि हमारे शरीरका प्रत्येक अंग पूर्ण आयु पर्यन्त शक्ति सम्पन्न बना रहे। तो फिर कैसे सम्भव हो सकता है। कि बुढापे में हमारे अंग शक्ति हीन होकर हमारे उत्साह को कम करदें।

[३] कार्यारम्भः

अब निम्न लिखित शब्दों का उच्चारण करके कार्य आरम्भ करें।

ओं भूर्भुवः स्वः ॥ गोभिल गृह्य १ । १ ।११॥

व्याख्या

१—सप्त व्याव्हृतियों की व्याख्य। हम 'सन्ध्या प्रदीपिका' में कर चुके हैं। भूः, भुवः और स्वः यह तीन व्याव्हृतियां उन में मुख्य हैं, इसी कारण यह महा व्याव्हृतियां कहलाती हैं।

ओ३म् सहित इन तीन महा व्याव्हृतियों का उच्चारण करके कार्य आरम्भ करना चाहिये।

इन शब्दों का मुख्यार्थ ईश्वर परक होता है। (क) भूः का अर्थः 'भूरिति वै प्राणः' जो सब जगत के जीवन का आधार, प्राणसे भी प्रिय और स्वयम्भू है, उस प्राण वाचक होने से 'भूः' परमेश्वर का नाम है (सत्यार्थ प्रकाश)। (ख) भुवः का अर्थः 'भुवरित्यपानः' जो सब दुःखों से रहित, जिस के संग से जीव सब दुःखों से छूट जाता है, इस लिये उस परमेश्वर का नाम ,भुवः' है। (सत्यार्थ प्रकाश)। (ग) स्वःका अर्थः—'स्वरिति व्यानः'

जो नाना विध जगत में व्यापक होके सब को धारण करता है, इस लिये उस परमेश्वर का नाम 'स्वः' है। (सत्यार्थ प्रकाश)।

"अतः "ओं भूर्भुवःस्वः" का अर्थ यह हुआ, कि जगत का जीवन, दुःख नाशक, सर्व व्यापक प्रभु के नाम से हम कार्य आरम्भ करते हैं।

इन व्याहृतियों के अनेक अर्थ हैं। जिन में से कुछ नीचे दिये जाते हैं।

भूः = सत, प्राण, पृथिवी, सौभाग्य (सत), अस्तित्व-सत्ता, Existance, शरीर।

भुवः = चित, अपान, अन्तरिक्ष, सुयश (यश), कल्पना शक्ति-चित्त, ज्ञान Knowledge, मन।

स्वः = आनन्द, वयान, द्यौ, सौन्दर्य (श्री), स्वत्व, आत्मानुभव, Self, आत्मा।

अतः इन व्याहृतियों के उच्चारण का तात्पर्य यह हुआ कि हमः—

[क] सत, चित, आनन्द स्वरूप परमात्मा की प्रसन्नता के लिये वा उसकी आज्ञा पालन के लिये इस यज्ञ का आरम्भ करते हैं। (ख) प्राण अपान और वयान की शुद्धि के लिये हवन यज्ञ का आरम्भ करते हैं। (ग) पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ लोक को पवित्र कर ने वाले कर्म का आरम्भ करते हैं। वा तीनों लोकों में यज्ञ व्यापक है उसका आरम्भ करते है। (घ)

सत वा सौभाग्य सुयश और कान्ति की प्राप्ति के लिये यह यज्ञ आरम्भ किया जाता है। (ङ) अपनी सत्ता को दृढ करने, कल्पना शक्ति वा ज्ञान को बढ़ाने और आत्मानुभव के लिये यह यज्ञ आरम्भ करते हैं। (च) आत्मिक, मानसिक तथा शारीरिक बल की प्राप्ति के लिये यह कार्य आरम्भ किया जाता है।

३---जिस प्रकार से वन, टू, थ्री बोल के किसी कार्य को आरम्भ करने की आज्ञा दी जाती है, उसी प्रकार भूः*, भुवः, स्वः भी कार्यारम्भ की आज्ञा रूप है अर्थात् शरीर, मन तथा आत्मा से कार्य आरम्भ करो।



*भूः— to be engaged in, to be occupied with.

(४) अग्न्याधानम्

निम्न लिखित मन्त्र बोल के अग्नि स्थापन करे।

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव् वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवी देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥

यजु०अ० ३ मं० ५ ॥

अर्थ—(भूर्भुवः स्वः) हे सच्चिदानन्द प्रभु ! मैं [द्यौः इव] द्यौ लोक के समान (भूम्ना) ऐश्वर्य्य से युक्त होऊं, तथा (पृथिवी इव) पृथिवी के समान (वरिम्णा) अच्छे गुणों (विशालता, उदारता आदि) से युक्त होऊं। और हे (देव-यजनि पृथिवि) विद्वान लोग जिसपर यज्ञ करते हैं ऐसी पृथिवी ! (ते तस्या पृष्ठे) तेरी उस पीठ पर(अन्नादम् अग्निम) अन्नों के भक्षक अग्नि को (अन्नाद्याय) भक्षण योग्य अन्न की प्राप्ति के लिये (आदधे) में स्थापित करता हूं।

व्याख्या

महाव्याहृतियों के उच्चारण के पश्चात् कार्य आरम्भ हो जाता है। एक मनुष्य तो हवन कुण्ड में समिधा चयन करने लगता है। दूसरा अग्नि आदि का प्रबन्ध करता है। स्वामी जी लिखते हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य (द्वि जाति) के घर से अग्नि ला अथवा घृत का दीपक जला, उससे कपूर में लगा, किसी एक पात्र में धर उसमें छोटी २ लकड़ी लगा के यजमान या पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों से उठा, यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़ कर ऊपर का मन्त्र बोल, अग्न्याधान करे। पर इससे द्वि जातियों के घर से लाने का तात्पर्य इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं मालूम होता कि अग्नि शुद्ध पवित्र होनी चाहिये। द्विज गृहस्थियों के घर में अहवनीय अग्नि हर समय जलती रहती थी इसी अग्नि में प्रतिदिन हवन करने का विधान था। अतः अव्वल तो अपने ही घर में अग्नि हर समय जलती रहती थी। पर यदि कभी यह अग्नि बुझ भी जाये तो दूसरे द्विज गृहस्थी के हां से अहवनीय अग्नि में से अग्नि लायी जावे क्योंकि यह अग्नि शुद्ध और खुशबूदार पदार्थों से जलाई जाती है। आजकल दियासलाई द्वारा कपूर में अग्नि जलाने का जो दस्तूर चल पड़ा है, यह भी उचित ही है। क्योंकि इसमें किसी प्रकार का दोष प्रतीत नहीं होता।

अग्नि पृथ्वी पर जलाई जाती है। और उसकी शिखा ऊपर की तरफ जाती है। इस प्रकार से वह पृथ्वी और द्यौ लोक, दोनों की तरफ यजमान का ध्यान आकर्षित करती है,

मानो शिक्षा देती है, कि हे यजमान! तुझे भी द्यौ और पृथ्वी के गुण ग्रहण करना चाहिये। इसीलिये इस मन्त्र में यह प्रार्थना की गई है, कि हे प्रभु मैं द्यौ के समान ऐश्वर्य से युक्त और पृथिवी के समान विशाल हृदय और उदार बन जाऊं। द्यौ में सूर्य, चन्द्र तथा अनेक नक्षत्र चमकते हैं, यही द्यौ का ऐश्वर्य है इसी ऐश्वर्य से द्यौ लोक प्रकाशित है। मनुष्य शरीर में सिर मानो द्यौ लोक है, (क्योंकि चक्षु आदि समस्त ज्ञानेन्द्रियें इसी में विद्यमान हैं) अतः हमारा सिर—मस्तिष्क भी द्यौ लोक के समान अनेक विद्याओं से प्रकाशित होना चाहिये। अथवा यों कहो, कि यजमान का अनेक सद् विद्याओं से युक्त होना अति आवश्यक है अन्यथा वह यज्ञ के महत्व को नहीं समझ सकता, और न उससे ठीक२ लाभ उठा सकता है। फिर द्यौ अपने उस ऐश्वर्य का स्वयं उपभोग न करके उससे समस्त संसार को लाभ पहुंचाता है। हमारे पास भी यदि ऐश्वर्य हो, तो उसके द्वारा दूसरों को लाभ पहुंचाना ही हमारा उद्देश्य होना चाहिये, न कि केवल स्वयं उपभोग करना। पृथिवी कितनी विशाल तथा कितनी उदार है। मनुष्य उसे पैरों से खूंदते हैं उसके ऊपर मलमूत्र करते हैं, पर वह सब को आश्रय देती है और अन्न जलादि से सब का पालन करती है। इसीलिए तो पृथिवी को माता कहते हैं। जो मनुष्य यह गुण (पूर्ण ज्ञान और उदारता) अपने अन्दर धारण कर लेता है वही यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित करने का अधिकारी है, दूसरा नहीं।

इस प्रकार से यज्ञ का अधिकारी बन कर यजमान पृथिवी पर यज्ञ की अग्नि स्थापित करता है। यहां अग्नि को अन्नाद❀ अन्न को खाने वाली कहा गया है। अग्नि का यह गुण स्पष्ट ही है। संसार का सारा अन्न अग्नि द्वारा ही खाया जाता है।

हवन कुण्ड की अग्नि में जो हवि डाली जाती है, वह उसका भक्षण कर जाती है। इसी प्रकार से हमारे उदर में भी एक अग्नि प्रज्वलित है। जो अन्न हम खाते हैं, उसे वह अग्नि ही भस्म कर देती है। जब यह अग्नि मन्द पड़ जाती है, तो खाया हुआ अन्न पचता नहीं, और वैद्य कह देते हैं कि इसे मन्दाग्नि रोग हो गया है। और यह मन्दाग्नि रोग समस्त रोगों की जड़ है। अतः यहां अग्नि का विशेषण अन्नाद कह कर यजमान को यह शिक्षा दी गई है कि हे यजमान ! तेरी अग्नि कभी मन्द न होने पावे अन्यथा तू अन्न को न खा सकेगा और मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा।

दूसरा मतलब यह है, कि जिस व्यक्ति वा जाति में प्रज्वलित अग्नि (तेज, बल वा उग्रता) नहीं है, वह संसार में अन्न [भोगों] को प्राप्त नहीं कर सकता, किन्तु दूसरों का अन्न (भोग) बन कर नष्ट हो जाता है। क्यों कि संसार में अन्न-भोगों के लिये सदा संग्राम जारी रहता है, जिसमें तेजस्वी

❀सोमेवान्नमग्निरन्नाद बृ० अ० १ ब्रा ४ के ६

अर्थ—सोम ही अन्न है और अग्नि ही अन्नाद है अर्थात अन्न को खाने वाला है।

विजय को, और तेज हीन पुरुष पराजय को प्राप्त होते हैं। अतः यहां यह शिक्षा दी गई है, कि हे मनुष्यो ! अपने भोगों की प्राप्ति के लिये ज्वलन्त तेज को धारण करो।

यह आध्यात्मिक अर्थ हुआ। सीधा सादा, आधिदैविक अर्थ यह है। कि यजमान हव्य को भक्षण करने वाली अग्नि का पृथ्वी-वेदी पर इस लिये स्थापन करता है, कि उस से वृष्टि हो कर पृथ्वी पर खूब अन्न उत्पन्न हो।

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्य मुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥मनु० अ० ३।७६

अर्थ—अग्नि में डाली हुई आहुति सूर्य को पहुंचती है, और वृष्टि से अन्न, अन्न से प्रजा होती है।इसी प्रकार से गीता में लिखा है:—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः ॥ गी० ३।१४॥

अर्थ—सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं। अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है, वृष्टि यज्ञ से होती है और यज्ञ कर्मों से उत्पन्न होने वाला है। मन्त्र में "अन्नाद्याय" शब्द है जिसका अर्थ भक्षण करने योग्य अन्न है। अन्न ऐसा भी हो सकता है, जो भक्षण करने योग्य नहीं, अर्थात स्वास्थ्य के लिये हानि कारक हो। यज्ञ करने से अनेक उत्तम २ औषधियों के असर से उत्तम, स्वास्थ्य दायक, और स्वादिष्ट अन्न उत्पन्न होता है। वेद में लिखा है:—

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः । यजु० ११।८३

अर्थ—[अन्नपते] हे अन्नों के स्वामी परमात्मन ! (नः) हमें [शुष्मिणः] बलकारी, [अनमीवस्य] रोग रहित (अन्नस्य) अन्न का [देहि] प्रदान कर।

अतः यहां अन्नाद्याय का तात्पर्य बलकारी और रोग रहित अन्न से है।

[पृथ्वी देव यजनी] विद्वान लोग तो समस्त प्रकार के यज्ञ पृथ्वी पर करते ही हैं, किन्तु ब्रह्माण्ड की दूसरी दिव्य शक्तियां भी इसी पृथ्वी पर यज्ञ करती रहती हैं। सूर्य, चन्द्र, विद्युत, अग्नि, वायु, वरुण आदि समस्त देव अपना २ शुभ कर्म इसी पृथ्वी पर कर रहे हैं इसी लिये यह पृथ्वी देव यजनी है।

इस मंत्र में निम्न बातें बतलाई गई हैं:—

(१) यजमान को पूर्ण विद्वान तथा उदार होना चाहिये।

(२) अपने अन्दर तेज धारण करना चाहिये ताकि सब प्रकार के उत्तम अन्नों को खा सके-भोगों को भोग सके।

[३] पृथ्वी पर, मनुष्य यज्ञ करने के लिया भेजा गया है। सब देवता भी इसी पृथ्वी पर यज्ञ करते रहते हैं। मनुष्य को भी अपनी जीवन यज्ञ रूपी बनाना चाहिये।

[४] हवन यज्ञ करने से उत्तम स्वास्थ्य दायक तथा बल वर्द्धक अन्न पैदा होता है।

(५)अग्नि प्रदीपनम्

अब इस अगले मन्त्र से छोटे २ काष्ठ अग्नि पर रखकर तथा पंखा आदि से हवा करके अग्नि को प्रदीप्त करना चाहिये।

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टा पूर्ते स थं सृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे ऽ अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ यजु० अ० १५ मं० ५४ ॥

अर्थ—(अग्ने) हे भौतिक अग्नि! (उद्बुध्यस्व) ऊपर उठो-प्रगट होओ (प्रति जागृहि) खूब जागो-प्रकाशित होओ (त्वम) तू (च) और (अयम) यह यज्ञ की समिधा आदि सामिग्री (सं सृजेथाम्) परस्पर मिलकर यज्ञ का संपादन करो (इष्टा पूर्ते) इष्ट सुखों की पूर्ति के लिये (अस्मिन) इस (उत्तरस्मिन) सर्वोत्कृष्ट-सुसज्जित सुशोभित (सधस्थे) एकत्र होने के स्थान [अधि] पर। [विश्वे देवाः] समस्त विद्वान् लोग (च) और (यजमान) यजमान [सीदत] अच्छे प्रकार से बैठें।

व्याख्या

अग्नि को वेदि पर स्थापित करने के पश्चात, उसके ऊपर

छोटी २ सूखी समिधाएं रखकर तथा पंखे से हवा करके, उसे खूब प्रज्वलित कर लेना चाहिये। क्योंकि प्रज्वलित अग्नि में ही यह सामर्थ्य है, कि हवियों को अच्छी प्रकार भस्म करके अनेक प्रकार के स्वास्थ्य दायक गैस उत्पन्न कर सके। वेद में लिखा है:—

समिद्धो अद्य मनुष्यो दुरोणे देवो देवान् यजसिजात-वेदः।

अथर्व० का० ५ सू० १२ मं० १

अर्थ—हे [जात वेदः देव] हे प्रकाश स्वरूप अग्निदेव! [अद्य] आज [मनुष्यः दुरोणे] मनुष्य के घर में (समिद्धा) प्रदीप्त हुआ २ [देवान् यजसि] देवों का यजन करता है। अर्थात प्रदीप्त अग्नि ही [देवों का यजन] दिव्य गुण युक्त पदार्थों-हव्यों का संगित करण Chemical combination कर सकता है।

मुण्डकोप निषद में लिखा है:—

यदा ले-लायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्य वाहने। तदा आहुतीः प्रतिपादयेत् ॥ मु० १। २। ११

अर्थ—(यदा) जब (समिद्धे) अच्छी तरह प्रदीप्त हुई२ (हव्य वाहनं) हव्य को ले जाने वाली (अर्चिः) अग्नि की ज्वाला (ले लायते) लपटें लेती हैं (हि) निःसन्देह (तदा) उसी समय (आहुतीः) आहुतियों को (प्रतिपादयेत्) देवे।

बहुधा देखा जाता है, कि अग्नि प्रदीपन मन्त्र को केवल एक बार पढ़कर, आगे कार्यारंभ कर दिया जाता है। और अग्नि को अच्छी तरह प्रदीप्त नहीं किया जाता। ऐसा करने से कभी कभी

तो अग्नि बुझ जाती है, अन्यथा धूवां तो उठता ही रहता है। यह भी याद रखना चाहिये, कि इस मन्त्र से बिना घृत के सूखी और पतली २ लकड़ियां अग्नि पर रखनी चाहियें। घृत वाली लकड़ियां शीघ्र अग्नि को ग्रहण नहीं कर सकता। किन्तु कितनी ही बार तो घृत टपक कर अग्नि के छोटे से शोले को बुझा देता है। और दोबारा अग्नि जलाने की आवश्यकता पड़ती है। जब सूखी लकड़ियां खूब जलने लगें तब अगले मन्त्र से घृत में भीगी हुई तीन समिधाएं रखने का विधान है।

मन्त्र के अर्थों पर विचार—अब मन्त्र के अर्थों पर विचार करना चाहिये। मन्त्र में बतलाया गया है:—

(१) खूब प्रकाशित अग्नि में हवन करना चाहिये जिससे आहुतियां अग्नि के साथ अच्छे प्रकार मिल जावें। और धूवां पैदा न हो।

(२) ऐसा करने से इष्ट (चाहे हुए) सुखों की प्राप्ति÷ होती है वा इष्ट और पूर्त दोनों प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं।

(३) शुद्ध, पवित्र और सुसज्जित जगह में हवन करना चाहिये।

÷नौर्ह वा एषा स्वर्ग्या। यदग्नि होत्रम्। शत०२।३। ३।१५

अर्थः—यह (यत) जो (अग्नि होत्रं) है (एषा) यह (हवै) निश्चय करके (स्वर्ग्या) स्वर्ग-सुःख विशेष को प्राप्त कराने वाली [नौः] नौका है।

(४) विद्वान् लोग यजमान के साथ मिलकर हवन करें।

मन्त्र का दूसरा अर्थ--(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप परमात्मन ! (प्रति जागृहि) मेरे हृदय में अच्छी प्रकार से जागो--प्रकाशित होओ, जिससे (उद्+बुध्यस्व) भली प्रकार बुद्धि तेज़ को प्राप्त होवे। (त्वम) तू [च] और [अयम] यह बुद्धि दोनों मिलकर [इष्टापूर्ते] इष्ट सुखों--मुक्ति की प्राप्ति को (सं सृजेथाम) अच्छी तरह सिद्ध किया करो।, [अस्मिन् इस [उत्तरस्मिन], सर्वोत्कृष्ट [सधस्थे] शरीर रूपी घर में [विश्वे देवाः] सब देव--इन्द्रियां [च] और [यजमानः] यजमान--आत्मा [अधि-सीदत] उन्नति पूर्वक स्थिर होवें।

हमारा शरीर एक यज्ञशाला❀ है। इसके अन्दर, आत्मा यज्ञमान हैं, इन्द्रयां ऋत्विज है।
जो अपनी अपनी जगह बैठे हुए हृदय--रूपी हवन कुण्ड में आहुतियां डाल रहे हैं इस कुण्ड में ब्रह्म ज्ञान रूपी अग्नि प्रज्वलित होनी चाहिये, तभी यज्ञ हो सकता है। और उस यज्ञ का फल इष्ट की पूर्त्ति अर्थात मुक्ति की प्राप्ति है।

❀ पुरुषो वावयज्ञः। छां० ३। १६। १ पुरुष ही यज्ञ है।

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे। यजु० ३४। ५५।

इन्द्रिय,मन और बुद्धि रूपी ७ ऋषि प्रत्येक शरीरमें रखे हैं।

--संप्रेद्धो अग्निर्जिह्वाभिरुदेतु हृदयादधि।।अ०का ६सू० ७५मं०१

अर्थात्--[हृदयात् अधि] उन हृदयके ऊपर [सं प्रेद्धः अग्नि] प्रदीप्त हुआ। २ [ब्रह्म ज्ञान रूपी] अग्नि (जिह्वाभिः उदे)तु अपनी ज्वालाओं से उदय होवें।

अविदन्ते अतिहितं यदासीत यज्ञ स्यधाम परमं गुहायत्
ऋ० १ । ८११ ।

अर्थ—जो (यज्ञस्य परमं धाम) यज्ञ का परम स्थान (गुहा) हृदय रूपी गुहा में, वह (अतिहितम्) अत्यन्त गुप्त है, परन्तु ज्ञानी सत्पुरुष उसको [अविदन्ते] प्राप्त करते हैं।

अर्थात् यह बाहरी यज्ञ तो केवल संकेत मात्र है यज्ञ का परम स्थान तो हृदय में है, पर साधारण मनुष्य उसको नहीं जानते, विद्वान सत पुरुष ही उसको जान सकते हैं, ।

इस आध्यात्मिक यज्ञ का वर्णन महाभारत में इस प्रकार आया हैः—

तस्यैवं विदुषो यज्ञस्यात्मा यजमानः श्रद्धा पत्नीः—
उरो वेदी—वेद शिखा, वाग्घोता, प्राण उद्‌गाता,
चक्षुरध्वर्युः मनो ब्रह्मा, श्रोतमग्नीत—यन्मुखं
तदाहवनीयः उद्‌गाता ।

अर्थ—इस ज्ञानी के यज्ञ में आत्मा यजमान, श्रद्धा यजमान पत्नि, छाती [हृदय] वेदी [वेद] ब्रह्म ज्ञान शिखा, वाणी होता, प्राण उद्‌गात,चक्षु अध्वर्यु, मन ब्रह्मा कान आग्नीध्र, मुख आहवनीय अग्नि है। कठोपनिषद में आया हैः—

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्निन् न चिकेतः
प्रजानन् । अनन्त लोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्व—
मेनन्निहितं गुहायाम् ॥ कठ० अ० १ व० १ मं० १४ ॥

अर्थ—यम कहता है। हे नचिकेता! (स्वर्ग) सर्व सुखों के साधन अग्नि यज्ञ को पूरी तरह जानता हुआ मैं तुझे बतलाता हूं। तू उसे मुझ से समझ और अग्नि जो हृदय रूपी गुफा में रक्खी हुई है वह अनन्त लोक [मुक्ति] की प्राप्ति का साधन और उसकी प्रतिष्ठा है।

अर्थात् बाहरी-भौतिक अग्नि द्वारा यज्ञ करने से अन्न, धन, प्रजादि सर्व सुखों की प्राप्ति और हृदय रूपी गुफा में रक्खी हुई आत्माग्नि से मुक्ति प्राप्त होती है।

अतः हवन यज्ञ का यह मन्त्र (उद्बुध्यस्वाग्ने) भौतिक अग्नि के साथ २ हृदय रूपी वेदी पर आध्यात्मिक (ब्रह्मज्ञान की) अग्नि के प्रज्वलित करने का आदेश भी दे रहा है और इस प्रकार से मुक्ति की प्राप्ति का साधन बता रहा है।

[६] समिधा धानम्

अब चार मन्त्रों से पलाशादि की तीन लकड़ियां, आठ २ अंगुल की, घृत में भिगोकर अग्नि में डालें।

(१) पहिली समिधा निम्न लिखित मन्त्र से डाली जाये।

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्ते नेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध-वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्म वर्चसे नान्नाद्येन समेधय, स्वाहा ॥ इदमग्नये ज़ातवेद से,—इदन्न मम् ॥

आश्वलायन गृ० अ० १ क० १० सू० १२

अर्थ— हे (जातवेद) सर्व व्यापक भौतिक अग्नि (अयम) यह (इध्म): ईंधन-काष्ठ, घृतादि (ते आत्मा) तेरा, आधार वा जीवन है। (तेन) इस काष्ठ से (इध्यस्व) प्रदीप्त हो, (वर्धस्व) वृद्धि को प्राप्त हो। (च) और (इद्ध) चमकाओ (च) और (वधर्य) बढ़ाओ (अस्मान्) हमको भी [प्रजया] प्रजा (पुत्र, पौत्रादि) से (पशुभिः) गौ, घोड़े आदि पशुओं से, (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्मज्ञान से [अन्नाद्येन] खाने योग्य अन्न से, [सम्-एधय] अच्छे प्रकार से, प्रदीप्त करो। [स्वाहा] हमारा दिया हुआ यह हवि सुहित-सुफल हो।

[इदम्] यह हवि (अग्नये जात वेद से) सर्व व्यापक अग्नि का ज्ञानस्वरूप परमात्मा के लिये है। (इदम्) यह [न-मम] मेरा नहीं है।

(नोट) यजु० अ० २ मं० १४ में भी कुछ २ ऐसे ही भाव प्रगट किये गये हैं।

एषा ते अग्ने समित्तया वर्धस्व चाप्यायस्व।
वर्धिषी महि च वयमा चप्यासिषी महि ॥

अर्थ—हे (अग्ने) भौतिक अग्नि! [ऐसा] यह [समित] प्रदीप्त होने का साधन-काष्ठ, घृतादि [ते] तेरे लिये हैं [तया] इससे (वर्धस्व) तू बढ़। [आप्यायस्व च] और खूब पुष्ट हो और (वयम) हम भी [वर्धिषीमहि] खूब बढें [आप्यासिषीमहि च] और सब प्रकार से वृद्धि शील हृष्टपुष्ट समृद्ध हों।

व्याख्या

जब अग्नि सूखी हुई पतली २ लकड़ियों में प्रविष्ट होगई, तो अब उसको स्थिर रखने के निमित्त घृत में भीगी हुई लकड़ियां रखनी चाहियें। सूखी पतली लकड़ियां शीघ्र ही भस्म होकर बुझ जा सकती हैं। पर, जब घृत की भीगी हुई लकड़ियां बहुत देर तक चलती रहेंगी। जिस प्रकार से चिराग में सूखी बत्ती को जलाया जाये, तो शीघ्र ही सारी बत्ती जलकर चिराग बुझ जाता है। पर, यदि बत्ती तेल में भिगो कर जलाई जाय, तो वह बहुत देर तक स्थिर रूप से जलती रहती है। प्रश्न हो सकता है कि अग्नि प्रदीपन के समय ही यदि घृत की भीगी हुई लकड़ियां रक्खी जायं तो क्या हर्ज है? इसका उत्तर यह है, कि सूखी लकड़ियां अग्नि को शीघ्र ग्रहण करती हैं। छोटे से शोले पर यदि घृत की भीगी हुई लकड़ियां रक्खी जायेंगी, तो इनमें घृत शौले पर टपक कर उसे बुझा देगा, वा जब तक लकड़ियां अग्नि को ग्रहण करें तब तक सम्भव है कि सारा काफ़ूर जलकर शौला बुझ जाये। पर, यदि पहिले ही सूखी लकड़ियों से अग्नि को प्रज्वलित करके फिर घृत वाली समिधायें रक्खी जायेंगी तो इस अवस्था में वह अग्नि बुझने न पायेगी और घृत की लकड़ियों में प्रवेश कर जायेगी।

पर तीन ही समिधायें रखने का क्या मतलब है! यदि इससे कम या अधिक समिधायें रक्खी जायें, तो क्या हानि है? इसका उत्तर यह है, कि प्रत्येक कार्य के लिये कोई

नियम तो होना ही चाहिये। यदि दो वा चार समिधायें रखने का नियम बना दिया जाता तब भी ऊपर का प्रश्न तो बना ही रहता, कि इतनी समिधायें रखने का विधान क्यों हैं, न्यून वा अधिक का क्यों नहीं। किंतु तीन समिधाओं में एक विशेष आध्यात्मिक भाव भी है। उसे समझने के लिये पहले निम्न लिखित पंक्तियों पर दृष्टि डालिये:—

(१) तीन अनादि पदार्थ—ईश्वर, जीव, प्रकृति। (२) ईश्वर के तीन गुण—सत, चित, आनन्द। (३) जीव के ३ गुण—ज्ञान, कर्म, भोग। (४) प्रकृति के ३ गुण—सत रज, तम। (५) तीन लोक—पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ। (६) तीन ज्योतियां—अग्नि, विद्युत, सूर्य। (७) ३ काल—भूत, वर्तमान, भविष्यत। (८) संसार की तीन अवस्थायें—उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय। (९) ३ प्रकार के जीव--मनुष्य, पशु---पक्षी, वनस्पति (१०) ३ विद्याएं—ज्ञान, कर्म, उपासना। (११) ३ प्रकार के कर्म—उत्तम, मध्यम, निकृष्ट। (१२) ३ प्रकार के मनुष्य—देव, मनुष्य, राक्षस। (१३) ३ प्रकार के दुःख सुख—आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक। [१४] ३ आश्रम जिनमें यज्ञ करना है—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ। (१५) तीन प्रकार के सत्व—व्यक्ति, समाज, जगत।

इससे स्पष्ट है, कि संसार पर जिस प्रकार से भी दृष्टि डाली जाय, वह तीन भागों में विभक्त है। इसी भाव को हम यों प्रगट कर सकते हैं, कि संसार रूपी यज्ञ का आधार भी

ब्रह्म, जीव, प्रकृति रूपी तीन समिधायें हैं। अतः मनुष्य को उचित है, कि इस त्रिपदात्मक जगत का ज्ञान प्राप्त करते हुए ज्ञान, कर्म उपासना द्वारा परम पुरुषार्थ-मुक्ति को प्राप्त करो। मनुष्य का जीवन भी यज्ञ रूप है। इस यज्ञ की तीन समिधायें ब्रह्मचर्य, गृहस्थ तथा वानप्रस्थ आश्रम हैं। यदि हम आश्रमों के कर्तव्य ठीकर पालन करें तो यह समिधायें (स्वाहा) सुहुत हुईं और यज्ञ पूर्ण होगया अन्यथा नहीं।

त्रिणाचिकेतस्त्रभिरेत्य सन्धिंत्रिकर्म कृत् तरित जन्म मृत्यू।

कठ अ॰ १व१मं १७

अर्थ—जिसने तीन वार ना चिकेत अग्नि (यज्ञ) पूरा किया है, और तीन (माता, पिता, आचार्य*) के साथ मेल किया है, और तीन कर्तव्य (ब्रह्मचर्य-ज्ञान प्राप्ति, गृहस्थ-सन्तानोत्पत्ति, और वान प्रस्थ-ब्रह्मोपासना) पूरे किये हैं, वह जन्म और मृत्यु को तर जाता है।

घृत में चिकनाई है जिसे संस्कृत में स्नेह कहते हैं स्नेह नाम प्रेम का भी है। मनुष्य जीवन के तीन भाग प्रेम मय हैं, बचपन में माता, पिता तथा गुरु से प्रेम, जवानी में स्त्री तथा बच्चों से प्रेम, बुढ़ापे--वान प्रस्थ आश्रम में विद्यार्थियों से प्रेम। इसलिये यह तीनों समिधाएं स्नेह युक्त अर्थात घी से सनी हुई हैं। यह स्नेह ही जीवन रूपी यज्ञ को स्थिर रखता है।

*मातृमान पितृमान आचार्यवान पुरुषो वेद (शतपथ)

और यह बन्धन का कारण भी है। यज्ञ समाप्त होने पर स्नेह भस्म हो जाता है, बन्धन टूट जाता है और सन्यास आश्रम में मनुष्य मानो मुक्त होकर विचरता है।

इन समस्त आध्यात्मिक भावों की तरफ यह तीन घृत की समिधाएं संकेत करती हैं और भौतिक अग्नि को चैतन्य करती हुई हमारे आत्मा में भी चेतंन्यता उत्पन्न करती हैं।

मन्त्रों के अर्थों पर विचारः—जिस मन्त्र से पहिली समिधा अग्नि में रक्खी जाती है, उसमें निम्न लिखित बातें कही गई हैं:—

(१) (काष्ठ वा घृतादि) ईंधन अग्नि का जीवन है, क्योंकि इसी से अग्नि प्रज्वलित रहती है।

(२) हवन से रोग निवृति तथा वीर्य की शुद्धि होकर सन्तान वृद्धि और अन्न. घासादि अधिक उत्पन्न होने, तथा पशुओं के रोगों के दूर होने के कारण पशु वृद्धि होती रहती है।

(३) हवन के मन्त्रों के आध्यात्मिक अर्थों पर विचार करने से मनुष्य ब्रह्म ज्ञानी हो जाता है। और तब उसके चहरे पर ब्रह्म तेज झलकने लगता है। जैसा कि, ऋषि श्वेतकेतु अपने शिष्य को देख कर कहते हैं।

ब्रह्मविद् इव सोम्य ते मुखं भाति (छांदो)

"हे प्यारे ! तेरा मुख ब्रह्म ज्ञानियों के समान चमक रहा है।" इस चमक को इस मन्त्र में ब्रह्म "वर्चस" और आचमन मन्त्र में "श्री" शब्द से वर्णन किया है।

४) हमारे खाने योग्य, उत्तम २, आरोग्य वर्धक, अनेक प्रकार के अन्न उत्पन्न होते हैं।

(५) जो पदार्थ हम अग्नि में डालते हैं, वह हमारे नहीं हैं, क्यों कि अग्नि ने ही उन्हें उत्पन्न किया है और इस लिये, हम अग्नि के ही अर्पण करते हैं। अथवा वह पदार्थ ईश्वर के हैं, और हम ईश्वर को ही अर्पण करते हैं। हे परमात्मन हमारा कुछ नहीं है, हम तो आपके दिये हुए पदार्थ ही आप के अर्पण करते हैं। इस प्रकार के विचारों से मनुष्य का घमंड दूर हो जाता है और निष्काम कर्म की शिक्षा मिलती है।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निः स्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधि गच्छति ॥गी० २।७१

अर्थ—जो पुरुष सब प्रकार की कामनाओं को छोड़ कर, ममता रहित, अहंकार रहित और स्पृहा रहित होकर वर्तता है वह शांति को प्राप्त होता है।

प्रथम मन्त्र का दूसरा अर्थः—यह तो मन्त्र का साधारण अर्थ हुआ। अब उसका आध्यात्मिक अर्थ देखिये।

हे (जात वेदः) सर्व व्यापक, चराचर के जानने हारे प्रभु! (अयं आत्मा) यह हमारा आत्मा (ते इध्मः) तेरा ईंधन है (तेन) इसके द्वारा आप (इध्यस्व) चमको (जिस प्रकार ईंधन में अग्नि चमकती है) और (वर्धस्व) मेरे आत्मा में वह ब्रह्म तेज दिन प्रति दिन बढ़ता ही रहे, घटने न पावे। और मुझे भी (ब्रह्म वर्चसेन) उस ब्रह्म ज्ञान से (इद्ध) चमकाओ। इसके अतिरिक्त प्रजा,

पशु और उत्तम २ अन्नादि पदार्थों से (सम-एधय) अच्छे प्रकार (वर्धय) बढ़ाओ।

आहा! कैसा उत्तम विचार है! यजमान इधर अग्नि में समिधा डालता है, उधर अपने आत्मा को समिधा बना कर ब्रह्माग्नि के अर्पण कर देता है और प्रार्थना करता है कि हे प्रभु! मेरे आत्मा में आप प्रगट हो, मेरा आत्मा आप के तेज से चमक उठे। फिर कहता है हे पिता! यह सब कुछ आप का ही तो है, मेरा इसमें क्या है। वेद कहता है:—

य एनं परिषीदन्ति समादधति चक्षसे।
सं प्रेद्धो अग्निर्जिह्वाभिरुदेतु हृदयादधि॥

अथर्व० का० ६ सू० ७५ मं० १

भावार्थ—जो इस अग्नि के चारों ओर बैठ कर हवनादि करते हैं और दिव्य दृष्टि के लिये इसका आधान करते हैं, उनके हृदय में प्रज्वलित होकर दूसरा ही आत्माग्नि (परमात्मा का तेज) प्रकाशित होता है।

यजमान को इस प्रकार की दिव्य दृष्टि की आवश्यकता है, जिससे वह ब्रह्माग्नि का प्रकाश अपने आत्मा में देख सके।

पिछले समय में ऐसी रीति थी, कि जब कोई जिज्ञासु किसी विद्वान के पास उपदेश लेने को जाता, तो हाथ में समिधा लेकर जाता था। इसका तात्पर्य भी यही है कि, हे गुरो! मैं समिधा रूप आया हूं। आप इसमें ब्रह्म ज्ञान रूपी अग्नि का प्रवेश करा दीजिये।

जहां ब्रह्म ज्ञान की याचना की है, वहां प्रजा, पशु और खाने योग्य अन्न की भी याचना की गई हैं। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है, कि मनुष्य को सांसारिक पदार्थों की भी आवश्यकता है। सच्ची उन्नति वह है, जो चौतर्फी हो। ब्रह्म ज्ञानी बनकर संसार से विमुख हो जाना उचित नहीं। गृहस्थादि के कर्तव्यों का पालन करते हुए ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। सच्चा वैदिक धर्म हमें यही शिक्षा देता है।

संगठन यज्ञ में भी यदि प्रत्येक आत्मा समिधा बनकर अपने आहुति करने दौड़े तो उन्नति क्यों न हो ऐसा राष्ट्र प्रजा, पशु और अन्य धन से भरपूर होगा, इस में संदेह नहीं।

हम पहिले वर्णन कर चुके हैं, ब्रह्मचर्य आश्रम जीवन रूपी यज्ञ की पहिली समिधा हैं। यह मन्त्र भी स्पष्ट रूप से ब्रह्मचर्य आश्रम की तरफ संकेत कर रहा है। यहां (जात वेद) पूर्ण ज्ञानी गुरु से प्रार्थना की गई है। आत्मा को समिधा (ईंधन) और ब्रह्म ज्ञान को अग्नि बताया गया है। ब्रह्मचर्य के पालन करने और ज्ञान के तेज से ब्रह्मचारी का चहरा चमकने लगता है, इस में संदेह ही नहीं। प्रजा, पशु और उत्तम पूजा की कामना यह जतलाने के लिये है, कि ब्रह्मचर्य आश्रम गृहस्थाश्रम के लिए मानो तैयारी है। बचपन गुजर गया तो समझो काल रूपी अग्नि में पहिली समिधा भस्म होगई। यदि, गुरु के पास जाकर ब्रह्मचर्य पालन करते हुए वेद ज्ञान प्राप्त किया, तो यह आहुति (स्वाहा) सुहुत हुई, अन्यथा नहीं।

(२) निम्न लिखित दो मन्त्रों से दूसरी समिधा अग्नि में डाली जावे।

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा ॥ इदमग्नये-इदन्नमम् ॥ यजु ३।१

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेद-से, स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे-इदन्नमम् ॥ यजु ३।२

अर्थ—हे मनुष्यो ! तुम (समइधा) प्रदीप्त करने के साधन काष्ठादि से (अतिथिम् अग्निम्) अतिथि के समान भौतिक अग्नि को (दुवस्यत) सेवन किया करो, और (घृतैः) घृत से (बोधयत) खूब प्रकाशित किया करो। फिर (आस्मिन्) इस अग्नि में (हव्या) सब प्रकार के हव्य (आजुहोतन) भली प्रकार डाला करो।

हे मनुष्यो ! तुम (सु+सम्+इद्धाय) खूब अच्छी प्रकार से प्रदीप्त हुई, (शोचिषे) खूब चमकती हुई तथा समस्त दोषों को दूर करने में समर्थ, (जातवेदसे) सर्व व्यापक, (अग्नये) अग्नि में (तीव्रम् घृतम्) सब प्रकार से शुद्ध किये हुए वा विष आदि दोषों को हटाने में तीव्र स्वभाव वाले घृत को (आ जुहोतन) होमा करो।

व्याख्या

पहिले मन्त्र में यह बतलाया गया है कि, अग्नि को लकड़ियों से जलाओ, घृत द्वारा प्रकाशित करो और फिर अनेक पदार्थ उसमें होमो दूसरे मन्त्र में कहा है कि,

---

*घृ क्षरण दीप्त्योः

(१) अग्नि यद्यपि सर्व व्यापक है। किन्तु, जब तक उसको काष्ट और घृतादि से अच्छी तरह प्रज्वलित न किया जाये, वह घर की वायु आदि के दोषों को दूर करने में समर्थ नहीं हो सकती।

(२) घृत, जो अग्नि में डाला जाये, वह पहिले से अच्छी तरह शुद्ध कर लेना चाहिये। तथा घृत का स्वभाव तीव्र होता है वह जब अग्नि में डाला जाता है, तो वह अनेक प्रकार के विषों को वायु आदि को दूर कर देता है। इसलिये, प्रतिदिन घृत से हवन करना चाहिये।

(३) समिधा का अर्थ (सम) अच्छी प्रकार, (इधा) चमकाने वाली, ऐसा है। अतः काष्ट ऐसा होना चाहिये, जो अच्छी प्रकार जलने वाला हो धूवां देने वाला न हो।

(४) अग्नि को अतिथि कहा गया है। अतिथि का आदर सत्कार करना गृहस्थ का नित्य कर्म है। अतः अग्नि का सत्कार भी घृतादि उत्तम पदार्थों से प्रतिदिन करना चाहिये।

मन्त्रों के अन्य भाव—(समिधा) आत्मा को समिधा बनाकर (अतिथि अग्निम्) पूजनीय ज्ञान स्वरूप प्रभु की (दुवस्यत) प्रतिदिन उपासना किया करो। और (घृतैः) जिस प्रकार घृत आदि पदार्थों से अग्नि को जगाया जाता है उसी तरह श्रद्धा भक्ति से (वोधयत) उस ब्रह्म ज्ञान को आत्मा में जगाया करो (अस्मिन) उस ब्रह्माग्नि में [हव्या] कर्मों तथा कर्म फलों की आहुति के रूप में [आ-जुहोतन] निरन्तर त्याग किया करो। (१)

(सु-सम-इद्धाय जात वेद अग्निम्) आत्मा से अच्छी तरह प्रकाशित हुई २ सर्व व्यापक-सर्वज्ञ ब्रह्माग्नि में, (शोचिषे) जो तेरे आत्मा को समस्त पापों से पवित्र करने में समर्थ है (घृतम् तीव्रम) तीव्र श्रद्धा रूपी घृत को (जुहोतन) प्रदान करो।

यह इन दोनों मन्त्रों के आध्यात्मिक अर्थ हैं। और इनमें वही भाव प्रगट किये गये हैं, जो पहिले मन्त्र में कहे जा चुके हैं। अर्थात् यह कि, ब्रह्म ज्ञान की अग्नि को अपने आत्मा में प्रति दिन श्रद्धा पूर्वक जगाना चाहिये।

जीवन रूपी यज्ञ में गृहस्थ आश्रम मानो दूसरी समिधा है। यह दोनों मन्त्र स्पष्ट रूप से गृहस्थ आश्रम के कर्तव्यों की तरफ संकेत कर रहे हैं। देखिये, पहिले मन्त्र में कहा है:—

(समिधा) जीवन शक्ति को प्रदीप्त रखने का साधन भोजनादि से (अतिथिम् अग्निम्) पूर्ण विद्वान और तेजस्वी अतिथि की (दुवस्यत) प्रतिदिन सेवा किया करो। और (घृतैः बोधयत) जल-घृत आदि पेय पदार्थों से उसे प्रसन्न किया करो। तथा (हव्या) सब प्रकार के आवश्यक पदार्थ उसे (आजुहोतन) दिया करो।

इस मन्त्र में बतलाया है कि, गृहस्थ को अतिथि सेवा प्रतिदिन करनी चाहिये।

दूसरे मन्त्र में बतलाया है कि गृहस्थी को प्रतिदिन हवन करना भी जरूरी है। क्योंकि उसे बस्ती के भीतर तंग गली कूचों में घर बना के रहना पड़ता है, इसलिये घर की वायु को शुद्ध और स्वास्थ्य दायक बनाने के लिये नित्य हवन आवश्यक है। क्योंकि खूब चमकती हुई प्रदीप्त अग्नि तथा तीव्र घृत आदि हव्य पदार्थों

में ही यह शक्ति है, कि वह वायु के विष तथा रोग क्रिमियों का नाश करके उसे शुद्ध कर सके।

संतान पैदा करना तथा धन कमाना तो ऐसे कर्तव्य हैं जिन्हें गृहस्थी कभी नहीं भूलता किन्तु अतिथि सेवा तथा हवन यज्ञ ऐसे कार्य हैं जिनको गृहस्थ, के झमेलों में पड़कर भूल जाना संभव है इसलिये इन कर्तव्यों की तरफ विशेष तौर से यहां ध्यान दिलाया गया है।

जवानी बीत गई तो समझो काल रूपी अग्नि में जीवन रूपी यज्ञ की दूसरी समिधा भस्म होगई। यदि धर्म पूर्वक गृहस्थ को भोगा और उत्तम धार्मिक सन्तान पैदा की तथा विद्वान अतिथियों का सत्कार किया और अग्नि होत्र आदि से समस्त संसार का उपकार किया, तो यह आहुति (स्वाहा) सुहुत हुई, अन्यथा नहीं।

३—निम्न लिखित मन्त्र से तीसरी समिधा अग्नि में डालनी चाहिये।

तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि।

वृहच्छोचायविष्ठय स्वाहा॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे-इदन्न मम॥ यजु०अ०३मं०३

अर्थ—हे अग्नि! (तम्+त्वा) उस तुझ को, जो (अङ्गिरः* अङ्गों का रस है, अर्थात अङ्गों में व्यापक होकर उन्हें पालन पोषण करती है, (समिद्भिः) समिधाओं से और (घृतेन) घृत

*अङ्गिरः—अंगिरसः, अंगाना हि यो रसः

से (वर्द्धयामसि) हम बढ़ाते हैं। तू (बृहत शोचा) बहुत चमकने वाली या दोषों को दूर करने वाली और (यविष्ठय) परिमाणुओं को छिन्न भिन्न करने में अति बलवान है।

व्याख्या

इस मन्त्र में अग्नि के निम्न लिखित गुण दर्शाये गये हैं।

१—(अङ्गिर:) अग्नि अंग २ में व्यापक होकर उन का पोषण करती है। जब यह अग्नि शान्त हो जाती है।

२—(बृहन शोचा) बहुत ही शुद्ध करने वाली है। अर्थात अग्नि से बढ़कर संशोधक और कोई पदार्थ नहीं।

३—(यविष्ठ्य) परमाणुओं को छिन्न भिन्न करने का, बल रखती है। जो पदार्थ अग्नि में डाले जाते हैं, उनका नाश नहीं करतो, किंतु परमाणुओं को छिन्न भिन्न करके और उनमें अनेक प्रकार के रासायनिक परिवर्तन करके, समस्त वायु-मंडल में फैला देती है।

आध्यात्मिक अर्थ—हे परमात्मन! आप (अंगिर:) अंग २ में व्यापक होकर हमारा पालन पोषण कर रहे हैं (तम् त्वा) हम उस तुझ को (समिद्भि घृतेन) ज्ञान प्राप्ति के समस्त साधनों भक्ति, श्रद्धा आदि से अपने आत्मा में (वर्द्धयामसि) बढ़ाते हैं आप (बृहत) महान हैं (शोचा) प्रकाश स्वरूप हैं (यविष्ठय) और प्रकृति के परमाणुओं के संयोग, वियोग करने में अनुपम बल वाले हैं।

इस मन्त्र में वानप्रस्थ आश्रम के कर्तव्य दर्शाये हैं जो

जीवन रूपी यज्ञ की तीसरी समिधा हैं। यह आश्रम इसलिये है कि मनुष्य गृहस्थ के झगड़ों से छुटकारा पाकर फिर अपने ब्रह्मज्ञान को ताजा करे और अनुभव Realize करे कि वह प्रभु हमारे शरीर के अंग २ में व्यापक होकर पालन पोषण कर रहा है अतः पालन पोषण की क्या चिन्ता है ! वही महान प्रभु बाह्य जगत को भी अणु परमाणुओं में व्यापक होकर संयोग विभाग का कारण बन रहे हैं।

अतः अधेड़पन गुजर गया तो समझो कि काल रूपी अग्नि में तीसरी समिधा भस्म होगई। यदि बनवासी बनकर योगादि साधनों द्वारा प्रकाश स्वरूप, संसार के उत्पन्न तथा नाश करने वाले महान प्रभु की प्राप्ति में यह समय बिताया तो यह आहुति सुहुत है, अन्यथा नहीं।

[७] घृत सिंचनम्

अब निम्न लिखित मन्त्र बोलकर घृत की पांच आहुतियां दी जायें।

ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जात वेदस्ते-नेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्धवर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभि र्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे–इदन्नमम्॥

अर्थ पीछे किया जा चुका है।

व्याख्या

घृत की भीगी हुई तीन समिधाओं द्वारा कुण्ड के मध्य में अग्नि ज्वाला स्थिर कर दी गई है। अब आवश्यकता इस बात की है कि अग्नि सारे कुण्ड में फैल जावे, इस लिये घृत की पांच आहुतियां देने का विधान है। चार, चारों तरफ और एक कुण्ड के मध्य में। घृत उष्ण करके और छान के तथा केसरादि सुगन्धित पदार्थ उसमें मिला के, पात्रों में पहले से रख लेना चाहिये। और फिर चमचा द्वारा, जो इसी मतलब के लिये बनाया गया हो, आहुतियां देनी चाहिये। पहली आहुति कुण्ड के पूर्व पार्श्व में, एक कोने से दूसरे कोन तक, सारी समिधाओं के ऊपर फैला के डालनी चाहिये। दूसरी दक्षिणी बिभाग में इसी प्रकार, से तीसरी पश्चिम भाग में, और चौथी उत्तरी भाग में। इसी प्रकार से चारों तरफ कीं समिधायें घृत से भीग जायें, तब पांचवीं आहुति कुण्ड के मध्य में देनी चाहिये। इससे मध्य में अग्नि खूब प्रज्वलित होकर चारों तरफ की समिधाओं में शीघ्र ही फैल जायेगी और सारे कुण्ड में अग्नि जलने लगेगी। प्रत्येक आहुति कमसे कम ६ माशा और अधिक से अधिक १ छटांक घृत की होनी चाहिये। प्रत्येक आहुति के साथ मन्त्र बोलना चाहिये (प्रश्न) घृत की पांच ही आहुतियां डालने का विधान क्यों है। न्यूनाधिक क्यों नहीं ?

(उत्तर) इसलिये, कि चार आहुतियां कुण्ड के चारों किनारों के साथ २ और एक मध्य में डालनी चाहिये ताकि सारे कुंड की समिधाएं घृत से सीचीं जायें।

(प्रश्न) क्या घृत को आहुतियां डालने का कोई विशेष क्रम है ? यदि हां तो क्यों ?

(उत्तर) हां ! यह क्रम हमने ऊपर वर्णन कर दिया है अब इसका कारण सुन लीजिये। यजमान कुण्ड के पश्चिम की ओर पूर्वाभिमुख बैठता है इससे उसे पहिले कुण्ड के पूर्व पार्श्व में घृतसिंचन करना योग्य है। क्योंकि यदि सबसे पीछे आहुति दी जाये तो अग्नि अधिक प्रज्वलित होजाने के कारण अग्नि शिखा के ऊपर से हाथ को दूसरी तरफ पहुंचाना कठिन होगा। पूर्व के पश्चात् फिर दक्षिण पश्चिम और उत्तर को आहुति देने का क्रम उचित है ही। मध्य में आहुति अन्त में देनी योग्य है, क्योंकि अग्नि शिखा बीच में ही उपस्थित है, उसपर घृत पड़ते वह प्रज्वलित हो उठेगी और फिर और दिशाओं में आहुति देनी कठिन हो जायेगी। पर यदि और दिशाओं में पहले ही घृत सिंचन हो चुका है तो बीच में घृत पड़ते हीं बीच की अग्नि भड़ककर थोड़ी देर में सारे कुण्ड में अग्नि जलने लगेगी।

(८) जल प्रसेचनम्

निम्न लिखित मन्त्रों से कुण्ड के चारों ओर जल छिड़कावे।

१—ओम अदितेऽनुमन्यस्व॥ इस मन्त्र से पूर्व में, अर्थ—हे अदिते अखण्डनीय परमात्मन (अनु-मन्यस्व) अनुकूल मति दीजिये।

२—ओम अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥ इस मन्त्र से पश्चिम में, ।(अर्थ—(अनुमते) हे बुद्धि स्वरूप परमात्मन (अनु,मनस्व) अनुकूल मति दीजिये।

३—ओम सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥ इससे उत्तर में

गोभिल गृ०प्र०खं० ३।सू० १-३

(अर्थ) (सरस्वति) हे विज्ञान स्वरूप परमात्मन (अनु॰ मनस्य) अनुकूल मति दीजिये।

(४) ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ यजु० अ० ३० मं० १

अर्थ—(सवितः देव) हे सर्वोत्पादक सर्व प्रेरक, तथा ऐश्वर्य के स्वामी प्रभु ! (प्रसुव) उत्पन्न कीजिये (यज्ञं) यज्ञ को, (प्रसुव यज्ञपतिं) उत्पन्न कीजिये यज्ञ के पालन करने वाले यजमान* को (भगाय) ऐश्वर्य के लिये (दिव्यः) हे दिव्य गुण युक्त (गन्धर्वः) पृथ्वी वा वाणी को धारण करने वाले प्रभुः (केतपू) आप बुद्धि को पवित्र करने वाले हैं (नः) हमारी (केतम) बुद्धि को (पुनातु) पवित्र करें, [वाचस्पति] आप वाणी के स्वामी हैं (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को (स्वदतु) मधुर बनाओ ।

---

*यजमानो वै यज्ञपतिः । शतपथ १।२।१२

व्याख्या

पहले तीन मन्त्रों में अनुमति के लिये प्रार्थना की गई है। अनुमति का अर्थ है (अनु) अनुकूल (मति) बुद्धि। अर्थात जब हम किसी काम को करने लगते हैं, तो हमारी बुद्धि हमें उत्तेजना देता है के, "हां यह शुभ कार्य है, इसे अवश्य करना चाहिये' इसी का नाम अनुमति अर्थात कार्य के अनुकूल बुद्धि है। ऐसे कार्य में अवश्य सफलता होती है और मनुष्य का कल्याण होता है। वेद में कहा है:—

अन्वद्य नोनुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम्। अथर्व० ७–२०–१

अर्थ—(अद्य) आज (नः) हमारी (अनुमतिः) अनुमति (देवेषु यज्ञं) देवताओं में यजन करने के लिये (अनुमन्यतां) अनुकूल होवे।

अन्विदमनुमते त्वं मंससे शं च नस्कृधि। अथर्व० ७-२०-२

अर्थ—(अनुमते) हे अनुकूल बुद्धि। (त्वं) तू [इदं] इस कार्य के लिये [अनुमंससे] अनुमति देती है [च] और (नः) हमारा (शं कृधि) कल्याण करती है।

अर्थात यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के लिये आज ही अनुमति मिलनी चाहिये, ताकि हम इस को आज ही आरम्भ कर सकें हमारा कल्याण हो।

"काल करे सो आज कर, आज करे सो अब्ब।
अवसर बीतो जात है, फेर करोगे कब्ब॥"

अनुमतिः सर्वमिदं बभूव यत् तिष्ठति चरति यदु च विश्वमेजति। तस्यास्ते देवि सुमतौ स्याम् अनुमते अनुहि मंस सेनः॥ अथर्व का०७सू० २० मं ६॥

अर्थ—(यत) जो (तिष्ठति) स्थिर है (चरति) जो चलता है (यद् उच विश्वम् एजति) और जो सब को चला रहा है (इदं सर्वं) यह सब कार्य (अनुमतिः वभूव) अनुकूल बुद्धि से ही होता है (देवि) हे देवि! (तस्याते सुमतौ स्याम) उस तेरी सुमतिसे हम रहेंगे। (अनुमते) हे अनुकूल बुद्धि! (नः-अनुमंससे) तू हमें अनुमति देती रह अर्थात ठहरना, चलना, चलाना जो कुछ संसार में हो रहा है वह अनुमति द्वारा ही हो रहा है तभी तो संसार के समस्त कार्य कल्याण कारी हैं। जो कार्य हम अपनी अनुमति के विरुद्ध करते हैं यह सब हमें हानि पहुंचाते हैं। कभी २ हमें दूसरों की अनुमति भी लेनी पड़ती है।

जल सिंचन के पहले तीन मन्त्रों में उसी अनुमति के लिये प्रार्थना की गई है। इन मन्त्रों में यह नहीं बतलाया कि किस कार्य के लिये अनुमति चाहिये। किन्तु यह स्पष्ट है, कि जो कार्य (अर्थात हवन यज्ञ) हम अब करने लगे हैं उसी के लिये प्रभु से अनुमति मांगी गई है। वेद में भी कहा है, हमारी अनुमति देवों में चलाये जाने वाले यज्ञ के लिये आज ही अनुमोदन देवे" (अथर्व)। इससे स्पष्ट हो गया कि, इन मन्त्रों में भी यज्ञ के लिये ही अनुमति मांगी गई है।

पहिले मन्त्र में परमात्मा को "अदिति" दूसरे में "अनुमति" और तीसरे में "सरस्वति" नाम से पुकार के प्रार्थना की गई है। तात्पर्य यह है कि हमारा यह यज्ञ खंडित न हो, अर्थात इस की कोई क्रिया छुटने न पाय अथवा हमारा कोई श्रेष्ठ काम अधूरा न रह जाये वा हमारा संगठन टूटने न पाये। हे प्रभु!

जैसे आप (अदिति) अखंड नीय+ हैं वैसे ही हमारा यह जीवन रुपी यज्ञ भी अखंडित रहे अर्थात शत वर्ष पर्यन्त चलता रहे।

"अनुमति" का अर्थ है, बुद्धि। हे प्रभु ! आप बुद्धि स्वरूप हैं, हमें यह अनुमति दीजिये कि हम प्रत्येक कार्य बुद्धि पूर्वक करें। ताकि हमारे इस यज्ञ में किसी प्रकार की क्षति उत्पन्न न हो।

प्रत्येक कार्य बुद्धि से विचार करके ठीक होता है पर विना विद्या, बुद्धि निर्मल नहीं होती (बुद्धि ज्ञानेन शुध्यति) इस लिये मन्त्र में विद्या वा विज्ञान से अनुमति मांगी गई है क्यों कि सरस्वति का अर्थ विद्या है।

अर्थात हवन यज्ञ ऐसा शुभ कार्य है, जिसका अनुमोदन अख:डनीय प्रभु ने वेदों* में किया है और बुद्धि तथा विज्ञान के भी अनुकूल है।

अब चौथे मन्त्र पर विचार करना चाहि । इस मन्त्र के तीन भाग हो सकते हैं:—

१—सवितः देव यज्ञं प्रसुव, भगाय यज्ञपतिं प्रसुव।

अर्थ—हे (सवित:देव) उत्पादक* वा प्रेरक ईश्वर!

+ दो अव खण्डनें

***ते यज्ञपतिर्माह्वार्षीत्। यजु०अ०१मं०२॥**

हे यज्ञ ! (यज्ञपतिः) यजमान (ते) तुझ से [माह्वार्षीत] कभी वियुक्त न हों।

* सविता सर्वस्य प्रसविता (निरुक्त दै०अ खं ३१।

मनुष्यों के हृदयों में (यज्ञं प्रसुव) यज्ञों की प्रेरणा करो (भगाय यज्ञ पतिं प्रसुव) और भाग्य व ऐश्वर्य के लिये यज्ञ के पालन करने वाले (यःपालयति स पतिः) यजमानों को उत्पन्न करो।

भावार्थ—हे प्रभु ! हमारे देश के मनुष्यों के हृदयों में ऐसी प्रेरणा कीजिये कि सब अनेक प्रकार के यज्ञों❀ (श्रेष्ठतम कर्मों) का अनुष्ठान किया करें वा श्रेष्ठ, कल्याण कारी संगठन बनाया करें तथा ऐसे यज्ञपति-नेता उत्पन्न कीजिए, जो उन यज्ञों, संगठनों--देश को उन्नति पथ पर ले जाने वाले श्रेष्ठ कर्मों को अच्छी प्रकार चला सकें ताकि देशका भाग्य उदय हो। 'भगाय' शब्द भग धातु से बना है जिसका अर्थ उन्नति, अभ्युदय, महानता, विशेषता, यश, प्रताप, सुन्दरता, सद्गुण, पुरुषार्थ तथा स्वतन्त्रादि हैं यह सब गुण यज्ञ पति को यज्ञों के अनुष्ठान से प्राप्त हो सकते हैं, यह यज्ञ की महानता है।

२—दिव्यो गन्धर्वःकेतपू केतन्नः पुनातुः।

अर्थ—हे(दिव्यः) दिव्य गुणों से युक्त, (गं-धर्वः+) वाणी को धारण करने वाले तथा (केत-पू) ज्ञान वा विचारों के पवित्र करने वाले प्रभु वा विद्वान वक्ता हम सब के (केत*) ज्ञान वा विचारों को (पुनातु) पवित्र कीजिये।

❀"यज्ञो वै श्रेष्ठतमकर्म" शतपथ ब्राह्मण १।७।४५ यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है।

+"गन्धर्व=गां+धर्वः" "गां"-भूमि, सूर्य, वाणी, इन्द्रियां। धर्व--धारण करने वाला।

*केत शब्द कित धातु से बना है जिसका अर्थ जानना,सोचना विचार करना आदि है।

भावार्थ— हे प्रभु आप हमारे विचारों को पवित्र कर दीजिये वा अच्छे २ गुणों वाले विद्वान वक्ता-प्रचारक हमारे पास आकर हमें अच्छे २ उपदेश दें जिससे हमारे विचार पवित्र हो जावें।

यह पवित्र ज्ञान वा विचारों के लिये प्रार्थना की गई है जो सब प्रकार के यज्ञों के लिये अत्यावश्यक हैं।

३—वाचस्पतिः वाचं नः स्वदतु ।

अर्थ—(वाचस्पति) वाणी के स्वामी ईश्वर का उत्तम वक्ता विद्वान [नः वाचं] हमारी वाणी को (स्वदतु) मधुर बनावें।

यह मीठी वाणी के लिये प्रार्थना की गई है। बिना इसके संगतिकरण-संगठन हो ही नहीं सकता।

जिह्वा अग्रे मधुमे जिह्वा मूले मधूलकम् ।

अर्थ—मेरी जिह्वा के अग्र भाग तथा जिह्वा के मूल भाग में मिठास रहे।

अतः इस चतुर्थ मन्त्र में, जहां यज्ञ संगठन तथा यज्ञ पतियों-नेताओं के लिये कामना की गई है, वहां पवित्र विचारों और मधुर वाणी के लिये भी कामना की गई है।

इन मन्त्रों से वेदी के चारों ओर जल छिड़कने वा चारों ओर खुदी हुई नाली में जल भरने का विधान है। इससे पहले की समस्त क्रियायें कुण्ड में अग्नि को अच्छी प्रकार से प्रज्वलित करने के लिये हैं। जब अग्नि खूब प्रज्वलित हो गई, तो फिर कोई कीड़ा मकोड़ा अग्नि के समीप न आने

पावे, इसी मतलब के लिये यह जल सिंचन क्रिया रक्खी गई है किंतु केवल इतना ही नहीं । इस क्रिया में कुछ और उत्तम भाव छिपे हुए हैं जिनका स्पष्टीकरण आवश्यक है।

१—इस देव यज्ञ में आकाश है, वायु है, अग्नि और पृथ्वी भी उपस्थित है, केवल जल देने की कमी है, वह भी मौजूद होनी चाहिये ताकि पांचों भूत (पंचदेव) यज्ञ में उपस्थित हो जावें।

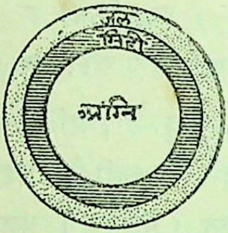
२—यजुर्वेद में यज्ञ के सम्बन्ध में लिखा है:—

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो धर्मोसि विश्वधा असि ॥ यजु०अ०१ मं०२

अर्थ---(वसो) हे यज्ञ तू (पवित्रम-असि) पवित्र है (द्यौ असि) द्यौ लोक के समान दिव्य गुणयुक्त सब का प्रकाशक है (पृथिवी-असि) पृथिवी है। पृथिवी के समान संसार को धारण, व पालन पोषण करने वाला है वा वायु को शुद्ध करने वाला है, (विश्वधाःअसि) सारे विश्व को धारण करने वाला है।

इस मन्त्र में यज्ञ को पृथिवी बतलाया गया है। पृथिवी के गर्भ में धधकती हुई अग्नि और ऊपर मिट्टी, पत्थरों का पलस्तर है और उसके ऊपर जल है। अब यज्ञ को पृथिवी का रूप देने के लिये कुण्ड के गिर्द जल भर दिया जाता है। मिलाओ पृष्ठ १३२ पर आकृति (क) को आकृति (ख) से।

पृथ्वी



आकृति (क)

हवन कुण्ड



आकृति (ख)

(३) जगत में दो शक्तियां काम कर रही हैं। एक उग्र है, दूसरी शान्त। इसलिये जगत की समस्त वस्तुएं उग्र और शांत दो श्रेणियों में विभक्त होगई हैं। जिन वस्तुओं का उग्र गुण है वह मानो अग्नि रूप ÷ और जिनका शान्त गुण है वह जल रूप है।

अग्नि के गुण उष्णता, प्रकाश, गति और उन्नति है। जल के गुण शीतलता, तिमरता (अंधेरा) शांति (स्थिरता) और (अधोगति) नीचे को गिरना है। अर्थात् यह दोनों वस्तुए एक दूसरी के विरुद्ध गुण रखने वाली हैं। इसीलिये अग्नि जलको सुखाती और जल अग्नि को बुझा देता है। इन दोनों में इतना विरोध होते हुए भी यह दोनों पदार्थ इकट्ठे रहते हैं और मिलकर संसार के यज्ञ को चला रहे हैं। देखो हमारे शरीर में अग्नि और जल दोनों उपस्थित हैं। तभी यह जीवन रूपी यज्ञ ठीक २ चल रहा है। वनस्पति संसार के लिये भी उष्णता और नमी दोनों की

÷प्रश्नोपनिषद में इन्हें "प्राण" "और "रयि" नाम दिया है।

आवश्यकता है। यदि जल न मिले तो पौदे सूख कर नष्ट हो जाते हैं। अतः सिद्ध हुवा कि इनमें से किसी भी एक शक्ति का प्रभाव नाश का कारण हो सकता है और अग्नि शक्ति तथा सोम-जल शक्ति दोनों ही मिलकर संसार को धारण कर रही हैं। इसीलिये इस जगत को "अग्नि षोमयि" कहते हैं। देखिये:—

(१) ऋतु यज्ञ में	सूर्य अग्नि	और	चन्द्रमा तथा पृथिवी	सोम है
(२) वर्षा यज्ञ में	बिजली अग्नि	और	बादल	सोम है।
(३) जीवन "	आत्मा	"	शरीर	" "
(४) गृहस्थ "	पुरुष	"	+स्त्री	" "
(५) राष्ट्र "	*राजा	"	प्रजा	" "
(६) मनुष्य "	क्रोध	"	शांति, प्रेम	"
(७) हवन "	भौ० अग्नि	"	जल	" "

देखिये! प्रत्येक यज्ञ में अग्नि और सोम दोनों उपस्थितहैं ÷।

हर जगह अग्नि, सोम से घिरी हुई है। देखिये:—

(१) पृथिवी और चन्द्रमा दोनों सूर्य के गिर्द घूमते हैं इसी से ऋतुएं उत्पन्न होती हैं।

+योषा वा आपः वृषा अग्निः। शतपथ

आपः स्त्री है और अग्नि पुरुष है।

*क्षत्रं वा इन्द्रः ॥ कौ० १२ ।८॥

÷अग्नीषोमौ यज्ञस्य पक्षौ। अथर्व का० ८ सू० ६ मं० १४।

अर्थ—अग्नि और सोम दो यज्ञ के पक्ष हैं।

(२) बिजली बादलों से घिरी रहती है, इसी से वर्षा होती है।

(३) आत्मा शरीर से घिरा हुआ है इसी से जीवन यज्ञ चल रहा है।

(४) पुरुष की उग्रता स्त्री के प्रेम से सीमित रहती है, इसी से गृहस्थ यज्ञ चल रहा है।

(५) राजा की शक्तियां प्रजा की शक्तियों से सीमित रहती हैं अन्यथा राजा प्रजा-रक्षण की जगह प्रजा-भक्षण का कार्य करने लगता है और रक्षक की जगह राक्षस बन जाता है।

(६) मनुष्य का क्रोध प्रेम से घिरा रहता है तभी वह मनुष्य रह सकता है। अन्यथा मनन शीलता*को खोकर पशु बन जाता है। इसीलिये प्रत्येक यज्ञ सपत्नीक होना चाहिये क्योंकि बिना जोड़े के यज्ञ सफल नहीं हो सकता।

अतःसंसार की भलाई इसी में है कि उग्रगुण शांत गुण से घिरे रहे, स्वतन्त्र न होने पावे क्योंकि उग्रगुण भड़कने वाला है इसलिये वह संसार में उछल कूद मचाता और उपद्रव खड़े करता है अतः उसे शांति के घेरे में बन्द रहना चाहिये।

हवन यज्ञ में अग्नि के गिर्द जो जल भर दिया जाता है वह इसी उत्तम भाव की तरफ संकेत करता है।

शांत गुण, उग्रगुण से संसार की रक्षा करता है। यहां कुण्ड के गिर्द जल भरने का तात्पर्य यह है कि बाहर से कोई

* सोमः पवते जनिता मतीनाम्। ऋग ९। ९६।
सोम बुद्धियों को पवित्र करता है वा उत्पादक है।

कीड़ी मकोड़ी अग्नि के पास न पहुच सके अर्थात् यज्ञ में भूल से भी कोई हिंसा न हो सके।

यह तो हुए मानसिक तथा सांकेतिक लाभ, अब ज़रा वैज्ञानिक लाभ भी सुन लीजिये। स्वास्थ्य विज्ञान (Hygiene) की पुस्तकों में लिखा होता है। कि जब किसी कमरे में गधक वा ऐसी ही कोई और औषिधि जलानी चाहिये, और कमरे को बन्द कर देना चाहिये। उसकी विषैली गैस कमरे में फैलकर समस्त कीटाणुओं को नष्ट कर देगी। परन्तु उस गैस के साथ २ पानी की वाष्प भी बन बन कर हवा में मिलती रहे, क्योंकि उसके वह गैस कीटाणुओं को नष्ट करने की शक्ति नहीं रखती। अतः गन्धकादि को जिस वर्तन में जलाया जाये, उसे एक दूसरे चौड़े तथा उथले, पानी से भरे हुए, बर्तन में रखकर जलाना चाहिये। ऐसा करने से उष्णता से थोड़ी २ जल वाष्प भी उड़ २ कर वायु में मिलती रहेगी। हवन करते समय भी अनेक प्रकार की कीटाणुनाशक गैसें बनती हैं। और कुण्ड के चारों तरफ जो जल छिड़का जाता है, उसकी भी वाष्प बन २ कर वायु में मिलती रहती है। इससे वायु के कीटाणु शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

(९) सामान्य होमाहुति

निम्न लिखित मन्त्रों से पिघले हुए घृत की चार आहुतियां दी जावें।

(१) ओम् अग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्नमम॥ यजु० २२। २७

इससे कुण्ड के उत्तर भाग में प्रज्वलित अग्नि में आहुति दी जावे।

अर्थ—प्रकाश स्वरूप प्रभु सूर्य वा भौतिक अग्नि के लिये (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है। यह अग्नि के निमित्त है, मेरी नहीं है।

(२) ओम् सोमाय स्वाहा। इदम् सोमायइदन्नम्। यजु २२।२७॥

इससे कुण्ड के दक्षिण भाग में प्रज्वलित अग्नि में आहुति दी जावे।

अर्थ—(सोमाय) शान्ति स्वरूप परमात्मा, चन्द्रमा वा जल के लिये (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है। यह सोम के लिये है, मेरी नहीं है।

(३) ओम् प्रजा पतये स्वाह। इदम प्रजा पतये इदन्न मम्॥ यजु० २२।२०॥

अर्थ—(प्रजापतये) प्रजापति-ईश्वर वा सूर्य वा गृहस्थी के लिये यह सुन्दर आहुति है। यह प्रजापति के लिये है, मेरी नहीं है।

(४) ओम् इन्द्राय स्वाहा। इदम इन्द्रायइदन्न मम ॥ यजु० २२।२७ ॥

अर्थ—(इन्द्राय) ऐश्वर्य के स्वामी परमेश्वर, सूर्य, राजा वा बिजली के लिये (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है। यह इन्द्रके लिये हैं मेरी नहीं है।

उक्त दोनों मन्त्रों से कुण्ड के मध्य में दो आहुति दी जावें।

व्याख्या

"आज्य" का अर्थ घृत और "आघार" का अर्थ पिघलाना है, अर्थात यह पिघले हुए घृत की आहुतियां हैं। इनमें से पहिली दो आहुतियों को गृह्य सूत्रों में आघारावाज्याहुति और शेष दो को आज्याभागाहुति नाम दिया है। इन नामों में क्या रहस्य है, सो अभी तक समझ में नहीं आया, पाठक विचार करें। ऋषि दयानन्द ने इन्हें सामान्यहोमाहुति कहा है।

इन मन्त्रों से अनेक भाव निकलते हैं। देखिये:—

(१) इन मन्त्रों में अग्नि, सोम, प्रजापति और इन्द्र, चार नाम आए हैं। यह चारों परमात्मा के नाम हैं। अतः—

ज्योति स्वरूप शान्ति के दाता, जगत के पालनहार और ऐश्वर्य के स्वामी प्रभु की प्रसन्नता तथा प्राप्ति के लिये यह चार आहुति दी जाती हैं।

[२] अग्नि तथा सोम के सम्बन्ध में बहुत कुछ पहिले लिखा जा चुका है। जितने भी उग्रगुण युक्त पदार्थ हैं, वह सब अग्नि स्थानी, और जो पदार्थ शान्त गुण युक्त हैं, वह सोम स्थानी हैं। अत: इन गुणों के धारण करने वाले जितने पदार्थ हैं, उनके निमित्त या इन दोनों उत्तम गुणों की प्राप्ति के लिये यह पहिली दो आहुतियां दी गई हैं।

(३) अग्नि के बिना यज्ञ नहीं हो सकता, इस लिये पहिली आहुति अग्नि के लिये है। और चूंकि उत्तर दिशा अग्नि प्रधान दिशा है, इस लिये, यह आहुति उत्तर दिशा में दी जाती है।

जल के बिना भी यज्ञ नहीं हो सकता, इस लिये दूसरी आहुति [सोम] जल के लिये दी जाती है। और चूंकि दक्षिण दिशा जल प्रधान दिशा है, इस लिये यह आहुति दक्षिण दिशा में दी जाती है।

(४) उग्रगुण युक्त वा तेजस्वी राजा राजा अग्नि है। क्योंकि, वही राष्ट्र में अग्रणी हैं। इस लिये पहिली आहुति अग्नि नाम से राजा के निमित्त दी गई है, और चूंकि उत्तम, धर्मात्मा, तेजस्वी राजा के बिना राष्ट्र (उत्तर=उच्चतर) विशेष उन्नति* को प्राप्त नहीं हो सकता इस लिये यह आहुति उत्तर दिशा में दी गई है।

---

*यजुर्वेद में लिखा है अग्ने हव्य ँ रक्ष (यजु० १। ११) [अग्ने] हे राजन (हव्य) प्रजा से जो कर रूप हवि तुझे दी जाती है (रक्ष) तू उसकी रक्षा कर नष्ट न करदे। उस कर को प्रजा की उन्नति के लिये खर्च करना चाहिये भोग विलास में व्यय नहीं कर देना चाहिये।

शांत तथा विचार शील होने के कारण राजा का मन्त्री सोम है। इस लिये हमारी आहुति सोम के निमित्त दी गई है। मन्त्री का राज काज में दक्ष होना अति आवश्यक है, इस लिये यह आहुति दक्षिण दिशा में दी जाती है। दक्ष मन्त्रियों से घिरा हुआ राजा ही देश को उन्नत कर सकता है।

अब तीसरे और चौथे मन्त्रों के भावों पर विचार करो:—

(५) उग्रता और सोमता दोनों ही आवश्यक हैं। इनमें से किसका दर्जा पहिले, और किसका पीछे है, यह कहते नहीं बनता। इसी भाव को प्रगट करने के लिये तीसरे और चौथे मन्त्रों में पहिले प्रजा पति के लिये और पीछे इन्द्र के लिये आहुतियां दी गई हैं। प्रजा पालन के लिये प्रेम की आवश्यकता है, यह सौम्य गुण है। और इन्द्र का अर्थ तेजस्वी है, यह उग्र गुण है। अर्थात् यहां सौम्य गुण को उग्र गुण पर मुख्य कर दिया गया है।

(६) प्रजा पति और इन्द्र बहुत कुछ समानार्थक शब्द हैं। इन के अर्थ हैं राजा, गृहस्थी, ईश्वर और सूर्य--अर्थात,

राजा=प्रजा का पालन करे और ऐश्वर्य का स्वामी हो।

गृहस्थी=सन्तान का पालन करे और धन कमाये।

ईश्वर=संसार का पालन करता है तथा समस्त ऐश्वर्य का स्वामी है और ऐश्वर्य प्रदान करता है।

सूर्य=खूब चमके तथा वर्षा द्वारा प्रजा का पालन करे और अन्न आदि पैदा करके वा रत्नादि उत्पन्न करके ऐश्वर्य प्रदान करे।

(७) प्रजा सन्तान को पैदा+ करने, तथा पालन करने के कारण गृहस्थी प्रजापति है। गृहस्थाश्रम ही यज्ञ का विशेष स्थान है और उत्तम तथा तेजस्वी संतान पैदा करना, तथा उसका अच्छी प्रकार से पालन करना भी स्वयं एक प्रकार का यज्ञ है। प्रजा पालन का कार्य घर के मध्य में होता है। मनुष्य बाहर से धन कमा के लाता है, और घर में डालता है, ताकि संतान का पालन पोषण अच्छी तरह हो सके। इसी भाव को प्रगट करने के लिये प्रजापति के नाम से आहुति कुण्ड के मध्यमें दी जाती है।

इन्द्र का अर्थ ऐश्वर्य का स्वामी वा तेजस्वी राजा है। राजा के बिना यज्ञ नहीं हो सकता (अराजकता में यज्ञादि उत्तम कार्य नहीं किये जा सकते) राजा ही यज्ञ का रक्षक होता है। इसीलिये यह चौथी आहुति इन्द्र-राजा के निमित्त ❀ डाली जाती है। यह आहुति मध्य में इसलिये डाली जाती है, कि राजा राष्ट्र का मध्य अर्थात् केन्द्र स्थानी है। और सारी प्रजा उसे कर रूप आहुति देती है।

+प्रजापति र्जनयति प्रजा इमा धाता। दधातु सुमनस्य मानः (अथर्व० का० ७ सू० १९ मं० १) अर्थ—(प्रजापति) सन्तान का पालन करने वाला गृहस्थी (इमाः प्रजाः) इस सन्तान को (जनपति) उत्पन्न करता है (सुमनस्यमानः) वही उत्तम मन वाला (धाता) सन्तान को धारण करने वाला (दधातु) उन सबको धारण करता है।

❀इन्द्राय भागं। यजु० १। १ राजा का भाग प्रजा को अवश्य देना चाहिये।

(८) चारों मन्त्रों को इकट्ठा विचार ने से यह भाव निकलतेहैं:—

(क) राष्ट्र में अग्नि के गुण (उग्रता, तेजस्वता, विद्या का प्रकाश तथा गति) तथा सोम के गुण (शांति, सुख, आल्हाद, शीलता विचार आदि समस्त गुण) पूरी तरह से विकसित हों। गृहस्थ अच्छी प्रकार से उत्तम और तेजस्वी सन्तान पैदा करें, राजा तेजस्वी हों, और राज्य कोष धन से पूर्ण हो।

(ख) हवन की अग्नि खूब प्रज्वलित हो वा सूर्य खूब तपे, जिससे भाप उठकर समय पर खूब जल बरसे। उससे उत्तम२ अन्न पैदा हों, और गृहस्थियों के घर अन्न धन से पूर्ण होजावें और वह अच्छी तरह संतानों का पालन पोषण कर सकें ऐश्वर्य की वृद्धि हो। राज्य कोष धन से भरपूर हो। और राजा तेजस्वी हो, ताकि शत्रुओं को राष्ट्र पर आक्रमण करने का साहस न हो सके।

(ग) अग्नि, चन्द्र, सूर्य और बिजली, संसार में चार ज्योतियों के नाम से आहुतियां डालने का भाव यह है, कि हम पूर्ण ज्ञान प्राप्त करें, और संसार में ज्ञान का प्रकाश खूब फैले।

[१०] प्रातःकाल हवन करने के मन्त्र

(१) ओ३म् सूर्यो ज्योति र्ज्योतिः सूर्य्यः ।

अर्थ—(क) सूर्य सर्व व्यापक, सर्व प्रकाशक तथा ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (ज्योति ज्योतिः) प्रकाशकों का प्रकाशक वा आत्माओं का आत्मा (सूर्यः स्वाहा) उस जगत प्रकाशक प्रभु की प्रसन्नता तथा प्राप्ति के लिये मैं यह आहुति देता हूं !

(ख) सूर्य ही ज्योति है और ज्योति ही सूर्य है। यह कथन बिलकुल सत्य है।

(ग) (सूर्य) पूर्ण ज्ञानी, तथा ज्ञान रूपी प्रकाश से दूसरों को प्रकाशित करने वाला गुरु वा उपदेशक, (ज्योतिः) संसार की ज्योति (ज्योति-स्तम्भ) है। (ज्योतिः (वेद ज्ञान ने ही उस गुरु वा उपदेशक को (सूर्य) सूर्य के समान तेजस्वी बनाया है॥१॥

२-ओ३म् सूर्यो वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा ॥२॥

अर्थ—(सूर्यः) सूर्य वा ज्ञान स्वरूप प्रभु (वर्च्चः) तेज,-ज्ञान प्रकाश (ब्रह्मज्ञान) का देने वाला* है। (ज्योतिः) वेद वा

---

*वर्च्चोदा असि वर्च्चो मे धेहि। हे प्रभु तू तेज (ब्रह्म-तेज) का देने वाला है। मुझे तेजस्वी बनाओ।

संसार में जो परमात्मा की परम ज्योति फैली हुई है (वर्च:) वह ब्रह्म ज्ञान का साधन है (स्वाहा) यह बात बिल्कुल ठीक कही गई है।

३-ओ३म् ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्योतिः स्वाहा॥ यजु० ३।६

अर्थ—(ज्योति:) ज्योति स्वरूप प्रभु (सूर्य्य:) सर्व व्यापक वा सब का आत्मा है। (सूर्य्य: ज्योति:) उसी सर्व व्यापक ईश्वर का प्रकाश सारे संसार में चमक रहा है। वा—

वह (ज्योति:) ज्योति स्वरूप प्रभु (सूर्य्य: सूर्य्य:) सूर्य्य का भी सूर्य है। (ज्योति:) उसी ज्योति स्वरूप की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है।

४-ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्य्यो वेतु स्वाहा ॥ यजु०३।१०।

अर्थ—(देवेन सवित्रा सजू:) अपने दिव्य प्रकाश और प्रेरणा शक्ति के सहित, तथा (उषसा इन्द्रवत्या) अत्यन्त चमकीली और रंगीली उषा-प्रभा के (सजू:) सहित [सूर्य्य] जगत को प्रकाशित करने वाला सूर्य भगवान (जुषाण:) इस आहुति को (वेतु) प्राप्त हो। (स्वाहा) इस प्रकार मेरी यह आहुति सुहुत हो।

व्याख्या

यह मन्त्र बड़े ही महत्व के हैं, क्योंकि शब्द थोड़े हैं किंतु भाव बहुत हैं।

पहले मन्त्र के तीन अर्थ ऊपर दिये गये हैं। शेष मन्त्रों के भी अनेक अर्थ हो सकते हैं।

पहिले मन्त्र के पहिले अर्थ में दिखलाया गया है, कि परमात्मा द्वारा ही यह संसार प्रकाशित (प्रगट-व्यक्त) हुआ है। प्रलय काल में तो यह सब अन्धकार में ढका+ हुआ (अप्रगट-अव्यक्त) था। प्रभु ने अपनी महिमा से इसे प्रकाशित किया। केवल इतना ही नहीं, किंतु सूर्यादि सब भौतिकज्योतियों में भी उसी परम ज्योति का प्रकाश प्रकाशित हो रहा है। "तस्य भासा सर्व इदं विभाति" (कठ) यह सब उसी के प्रकाश से चमक रहा है।

जिस प्रकार से परमात्मा सारे ब्रह्माण्ड की ज्योति है, उसी प्रकार से हमारा आत्मा हमारे शरीर के अन्दर ज्योति है। किन्तु वह परम ज्योति के अन्दर भी व्यापक है, इसी लिये तो उसका नाम परम-आत्मा है।

दूसरे अर्थमें बतलाया गया है कि सूर्य ज्योति है और ज्योति सूर्य है। अर्थात् ज्योति और सूर्य दो वस्तुएं न समझनी चाहियें। जिसे आप सूर्य कहते हैं उसी की तरफ देखो, तो ज्योति के अतिरिक्त और क्या दिखाई देता है।

ईश्वर पक्ष में लो, तो भाव यह होंगे। (सूर्यः जगत का प्रकाशक प्रभु और (ज्योतिः) उसका प्रकाश दो वस्तुएं नहीं हैं

+तमासीत् तमसा गूढमग्रे प्रकेतं सलिलं सर्वमाइदम्। तुच्छ्येनाभ्वापिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिना जायतैकम्॥ (ऋ०) अर्थ—प्रलय काल में अन्धेरा था और यह सारा प्रकृतिक संसार अलग २ बिना एक सम हुआ २ उस अन्धेरे में छुपा हुआ था। एक परमात्मा की शक्ति से यह प्रगट हुआ।

जगत में प्रभु की सत्ता का प्रकाश स्पष्ट दिखाई दे रहा है। मूर्ख मनुष्य इस प्रकाश के अतिरिक्त कुछ और प्रभु को समझ रहा है, और उस की तलाश में भटकता फिरता है। यह मालूम ही नहीं कि ज्योति ही उसका स्वरूप है।

तीसरे अर्थ में बतलाया है, जिस प्रकार से सूर्य, पृथिवी तथा चन्द्रादि को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार से गुरु वा उपदेशक अपनी विद्या के प्रकाश से दूसरों की बुद्धियों को प्रकाशित कर देता है, इस लिये यह गुरु वा उपदेशक भी संसार के सूर्य हैं— संसार के प्रकाश हैं-ज्योतिस्तम्भ हैं। इन से प्रकाश को प्राप्त करके संसार धर्म के सीधे रास्ते पर चल सकता है। और जब संसार में गुरु वा उपदेशकों का अभाव हो जाता है तो संसार को अन्धकार में भटकना और ठोकरें खाना पड़ता है।

दूसरे तथा तीसरे मन्त्रों के भी अनेक अर्थ हो सकते हैं। किन्तु भाव पहिले मन्त्र के समान ही हैं, केवल शब्दों का उलट फेर है। ऊपर केवल आध्यात्मिक अर्थ कर दिये गये हैं।

चौथे मन्त्र में बतलाया गया है, कि प्रातः काल का प्रकाश फैल जाने, तथा रंगीली उषा के प्रगट हो जाने पर हवन करना चाहिये। उस समय मानो हवि को ग्रहण करने के लिये सूर्य भगवान अपनी अर्द्धाङ्गिनी प्रभा के सहित हमारे घर में प्रवेश, करते हैं और जगत के उत्पादक प्रभु अपनी दिव्य ज्योति (श्री) के सहित हमारे हृदयाकाश में उदय होते हैं। इस तरह हमारे भौतिक तथा अध्यात्मिक दोनों यज्ञ सफल हो जाते हैं।

जिस प्रकार से पुरुष और स्त्री का जोड़ा है, उसी प्रकार से सूर्य तथा ज्योति—उषा※ का जोड़ा है। यह पति पत्नि सदा साथ २ रहते हैं। अर्थात् सूर्य ज्योति से और ज्योति सूर्य से अलग नहीं हो सकती। इसी प्रकार का सम्बन्ध पति-पत्नि में होना चाहिये।

पति पत्नि विवाह समय सूर्य का दर्शन करते हैं। इसका अर्थ इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है, कि हे देवी! जिस प्रकार से सूर्य की प्रभा उसके साथ रहती है, उसी प्रकार से तू सदा मेरे साथ रह। इसी लिये यजमान, यजमानपत्नि सहित यज्ञ करें, और समस्त देव देवङ्गनाओं सहित यज्ञ में पधारें। इसी में यज्ञ की सफलता है।

ज्योति ही सूर्य की शोभा है, अतः पति की शोभा-कान्ति श्री पत्नि ही है।

सूर्य और ज्योति दोनों एक हैं, दो नहीं। इसी प्रकार से पुरुष और स्त्री दोनों मिल कर एक बनते हैं। स्त्री दूसरा व्यक्ति नहीं, किन्तु पुरुष का आधा अङ्ग है।

देखो प्रतिदिन, प्रातः काल सूर्य अपनी शिंगार मयी-रंगीली पत्नि उषा+ सहित, तुम्हें आदर्श गृहस्थ-धर्म सिखाने के लिये तुम्हारे घर में प्रवेश करता है। क्या तुम उससे शिक्षा ग्रहण करके गृहस्थ को स्वर्ग धाम बनाओगे।

※उषाः पत्नी शत० ६।१।३।७

+उष—चमकना।

पहिले मन्त्र में सूर्य ने ज्योति को, और तीसरे में ज्योति ने सूर्य को घेरा हुआ है। इससे यह भाव निकलता है, कि पत्नि का मन पति प्रेम से, तथा पती का मन पत्नि प्रेम से सीमित होना चाहिये, ताकि दूसरे का प्रेम अन्दर प्रवेश न कर सके यही आदर्श पती पत्नि प्रेम है, यही आदर्श गृहस्थ है।

(११) सायंकाल हवन करने के मंत्र

---

(१) ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ यजु० ३ । ६

अर्थ—(अग्नि) सर्व व्यापक, तथा ज्ञान स्वरूप परमेश्वर (ज्योतिर्ज्योतिः) प्रकाशकों का प्रकाशक है। (अग्निः स्वाहा) उस प्रकाश स्वरूप प्रभु की प्रसन्नता तथा प्राप्ति के लिये मैं यह आहुति देता हूं ॥१॥

(२) ओं अग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा ॥ यजु० ३ । ६

अर्थ—(अग्निः) अग्नि वा ज्ञान स्वरूप प्रभु (वर्च्चः) तेज वा ज्ञान हैं। (ज्योतिः) में जो परमात्मा की ज्योति फैली हुई है वही ब्रह्म तेज है (स्वाहा) यह ठीक कहा गया है।

(३) अग्नि ज्योंति ज्योंति रग्नि स्वाहा ॥ यजु० ३ । ६

नोट—इस मन्त्र को मनमें बोलके आहुति देनी चाहिये।

अर्थ—पहिले मन्त्र के समान।

(४) ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥ यजु० ३ । १०

अर्थ—(अग्निः) अग्नि (देवेन सवित्रा सजू) अपने दिव्य प्रकाश तथा जगत् की उत्पादक तथा प्रेरक शक्ति के साथ तथा (रात्री इन्द्रवत्या) चमकती हुई वा सजी धजी रात्री के साथ (जुषाणाः) इस आहुति को (वेतु) प्राप्त हो।

व्याख्या

यह मन्त्र प्रातः काल के मन्त्रों के समान हैं, केवल सूर्य की जगह अग्नि शब्द आया है। कारण यह है कि सूर्य के छिप जाने के पश्चात् अग्नि ही उसका प्रतिनिधि होता है। चौथे मन्त्र में रात्री और अग्नि का जोड़ा बतलाया है। इसका भाव यह है कि पुरुष अग्नि के समान तेजस्वी और स्त्री रात्री के समान श्रृंगार मयी और विश्राम देने वाली होती है।

तीसरे मन्त्र (अग्नि ज्योंति ज्योंतितिरग्नि स्वाहा) को मनमें बोल के आहुति देनी चाहिये। इसका तात्पर्य दैनिक मुख्य यज्ञ की समाप्ति की सूचना है अर्थात् इससे सुनने वालों को यह पता लग जाता है कि अब केवल एक मन्त्र के पश्चात् मुख्य कार्य समाप्त हो जायेगा।

[१२] प्रातः और सायं के मंत्र

[क] व्याहृत्या हुतियां

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। इदमग्नये प्राणाय इदन्नमम् ॥१॥

अर्थ—(भूः) समस्त संसार का प्राण-जीवन परमात्मा प्रसन्नता के लिये (अग्नये) सर्व व्यापी, गति शील भौतिक अग्नि की अनुकूलता वा उपयोगिता के लिये, तथा (प्राणाय) प्राण वायु की शुद्धि के लिये (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है। (इदम्) यह आहुति [अग्नये] सर्व व्यापक, ज्ञान स्वरूप परमात्मा वा गतिशील भौतिक अग्नि के लिये तथा (प्राणाय) समस्त संसार में फैले हुए जीवन के लिये है [इदम्] यह (मम) मुझ अकेले की (न) नहीं है।

ओं भुववार्यवेऽपानाय स्वाहा। इदं वायवे अपानाय इदन्नमम् ॥२॥

अर्थ—(भुवः) दुःख नाशक प्रभु की प्रसन्नता के लिये (वायवे) समस्त संसार को जीवन प्रदान करने वाले वायु की की पवित्रता, अनुकूलता तथा उपयोगिता के लिये और (अपानाय) अपान वायु की शुद्धि के लिये (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है। (इदम्) यह आहुति (वायवे) बल स्वरूप प्रभु वा भौतिक

वायु के लिये तथा (अपानाय) संसार के अपान वायु की शुद्धता के लिये है (इदम् न मम) यह मुझ अकेले की नहीं है।

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा। इदमादित्याय व्यानाय इदन्नमम् ॥३॥

अर्थ—(स्वः) सुख स्वरूप प्रभु की प्रसन्नता के लिये (आदित्याय) समस्त संसार में चेष्टा उत्पन्न करने वाली सूर्य की किरणों की अनुकूलता तथा उपयोगिता के लिये (व्यानाय) और व्यान वायु की शुद्धि के लिये (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है। (इदम्) यह आहुति (आदित्याय) प्रकाश स्वरूप प्रभु वा सूर्य की किरणों के लिये है (इदम न मम्) यह मुझ अकेली की नहीं हैं।

ओं भूर्भुवः स्वरग्नि वायवादित्येभ्यः प्राणापान व्यानेभ्यः स्वाहा। इदमग्नि वायवादित्येभ्यः प्राणापान व्यानेभ्यः इदन्नमम् ॥४॥

अर्थ—(भूर्भुवः स्वः) समस्त संसार के जीवन दुःख हर्ता, सुख कर्ता वा सच्चिदानन्द स्वरूप प्रभु की प्रसन्नता के लिये, अग्नि, वायु और सूर्य की किरणों की पवित्रता तथा इन वस्तुओं से यथा योग्य उपयोग लेने के लिये, तथा प्राण, अपान और व्यान की शुद्धि के निमित्त (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है। (इदम्) यह आहुति (अग्नि-वायु-आदित्येभ्य) अग्नि, वायु और सूर्य के प्रकाश के निमित्त तथा संसार के प्राण अपान और व्यान के निमित्त है (इदम न मम्) यह मुझ अकेले की नहीं हैं।

ओं आपो ज्योतिरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवःस्वरों स्वाहा ॥५॥

अर्थ—जो (आप:) जल के समान शान्ति देने वाला (ज्योति:) प्रकाश स्वरूप ज्ञान स्वरूप (रस) आनन्द रस का देने वाला (अमृतं) अमर पद–मुक्ति का दाता है. वह (ब्रह्म) सबसे बड़ा और (भूर्भुवः स्वः) सच्चिदानन्द स्वरूप है। (ओं) उसी का मुख्य नाम "ओ३म्" है। (स्वाहा) उसी की प्रसन्नता के लिये यह सुन्दर आहुति है।

व्याख्या

हवन के यह मन्त्र भी बड़े ही महत्व के हैं। क्यों कि इनमें यद्यपि शब्द तो थोड़े और साधारण ही हैं, परन्तु भाव बहुत ही ऊंचे हैं। इनमें मानो विश्व का नकशा खोलकर मनुष्य के सामने रख दिया गया है, और अच्छी तरह से दिखला दिया गया है। कि हे मनुष्य अच्छी तरह देखले कि तेरा इस विश्व के साथ क्या संबंध है और इस सम्बन्ध से तू क्यों कर लाभ उठा सकता है।

(१) इन मन्त्रों पर हम कई प्रकार से विचार कर सकते हैं। प्रथम हमें इनके आधिदैविक अर्थों पर विचार करना चाहिये। यह संसार दो भागों में विभक्त है। एक भाग है इसका "मैं" और दूसरा "मेरे अतिरिक्त समस्त संसार" इन ही को हम "आंतर्राष्ट्रीय जगत" और "ब्रह्म जगत" के नाम से पुकारते हैं। गूढ दृष्टि से देखोगे तो इन दोनों में बहुत कुछ समानता पाई जायेगी। देखो, वाह्य जगत तीन भागों में विभक्त है (१) भू: लोक, (पृथिवी लोक) (२) भुवः लोक, (अन्तरिक्ष लोक) (३) स्वः लोक

(द्यौलोक)। तीनों लोकों में अनेक देवता वास करते हैं, किन्तु उनमें तीन मुख्य हैं अर्थात् भूः लोक का देवता अग्नि है, अन्तरिक्ष का वायु और लोक का आदित्य-सूर्य है, जिस का प्रकाश तीनों लोकों में फैलता है। अब आन्तरिक जगत की बनावट देखो यह भी तीन भागों में बटा हुआ है। जिसे हम धड़ कहते हैं उसके दो नाम हैं। पेट वाला भाग और छाती वाला भाग। पेट वाला भाग, टांगों सहित, भूः लोक है। क्योंकि यह भाग शरीर में सबसे निचला और आधार रूप है। इसमें अग्नि देव जठर में वास करते हैं। छाती वाला भाग भुवः लोक है। क्योंकि यह मध्य का भाग है, इसमें वायु देव प्राण अपान के रूप में रमण करते हैं। शरीर का तीसरा भाग शिर है। यह द्यौलोक है। क्योंकि यह सबसे ऊपर का भाग है, इसमें आदित्य देव ज्ञान शक्ति तथा ज्ञानेन्द्रियों के रूप में वास करते हैं। और ज्ञान तन्तुओं का जाल आदित्य की किरणों के समान) समस्त शरीर में फैला हुआ है। इस प्रकार से वाह्य जगत और आन्तरीय जगत में समानता पाई जाती है। मानो आन्तरीय जगत वाह्य जगत का छोटा सा नमूना है। वेद में लिखा है:—

वातात् ते प्राणामविंद सूर्याच्चक्षु रहंतव। अथर्व ८.२-३

अर्थ—हे मनुष्य! (अहम्) मैं (ते प्राणम्) तेरे लिये प्राणों को (वातात्) वायु से और (तव चक्षुः) तेरे नेत्रों को (इदं सूर्यात्) इस सूर्य से (अविदम) उत्पन्न करता हूं!

अर्थात् हमारे अन्दर जो शक्तियां काम कर रही है वह बाहर

काम करने वाली शक्तियों से ही उत्पन्न की गई हैं। अथवा अंतर की शक्तियां बाहर की शक्तियों का अंश मात्र हैं।

अंश और अंशी में अनुकूलता आवश्यक है अत: जब तक वाह्य जगत और आन्तरीय जगत में अनुकूलता बनी रहती है तब तक यह शरीर स्वस्थ और सुखी रहता है। और जब इनमें प्रतिकूलता उत्पन्न हो जाती है तो शरीर अस्वस्थ हो जाता है और यदि वह शीघ्र दूर न हुई, तो मृत्यु को भी प्राप्त होजाता है। सुतराम दीर्घ जीवन की प्राप्ति के लिये वाह्य शक्तियों तथा आन्तरिक शक्तियां में अनुकूलता बनाये रखनो अत्यन्तावश्यक है जैसा कि वेद ने बताया है:—

इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्ताम् । अथर्व १ ।३५। ४

अर्थ—हे मनुष्य ! इन्द्र, अग्नि आदि (विश्वेदेवा:) सब देव (ते) तुझे (अनुमन्यन्ताम्) अनुमोदन करें वा तेरे अनुकूल रहें।

देवों की अनुकूलता किस प्रकार से प्राप्त की जाती है, इस संबंध में वेद ने स्वयं प्रश्न उठाया है।

केन देवान् अनुक्षियति । अथर्व० १० । २ ।२२ ॥

अर्थ—मनुष्य किस सामर्थ्य से देवों को अपने अनुकूल बनाता है ? और वेद स्वयं ही उत्तर देता है: –

ब्रह्म देवान् अनुक्षियति । अथर्व १० । २ । २३

अर्थ—ब्रह्म ही देवों को अनुकूल बनाता है। वा वेदज्ञान से ही मनुष्य देवों को अनुकूल बनाता है।

तात्पर्य यह है, कि परमात्मा ने तो सारे देवों को हमारे अनुकूल ही बनाया है, पर हम अज्ञान वश इन देवों को प्रतिकूल कर लेते हैं। और दुःख उठाते हैं। अतः हमें वाह्य तथा आंतरीय जगत का ज्ञान वेद द्वारा प्राप्त करना चाहिये।

तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः। सूर्यस्ते तन्वे ३ शँ तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठः। अथ० ८।१।५

अर्थ—हे मनुष्य! (मातरिश्वा वातः) अन्तरिक्ष में विचारने वाला वायु (तुभ्यं पवता) तेरे लिये सदा बहता रहे। वा पवित्रता करता रहे। (आपः) जल (तुभ्यं) तेरे लिये (अमृतानि वर्षताम्) अमृतकी वृष्टि करें। (सूर्य ते तन्वे शं तपाति) सूर्य तेरे शरीर के लिये कल्याणकारी होकर तपो (मृत्यु त्वां दयतां) मृत्यु तुझ पर दया करे। (मा प्रमेष्ठा) तू मत मर।

सब ही देवता जब प्रभु ने तुम्हारे लिये सुखकारी बनाये हैं, तो तुम उनसे क्यों मुख छुपाते हो। सूर्य के प्रकाश को अपने घरों में खुला आने दो, खुली वायु में भ्रमण करो, तब ही मृत्यु तुम पर दया करेगा और तुम दीर्घ जीवी बनोगे।

हवन के जिन मन्त्रों की हम व्याख्या लिख रहे हैं, अब उनका भाव अच्छी तरह समझ में आ सकेगा। हवन यज्ञ दीर्घ जीवन प्राप्त करने का साधन है और इन मन्त्रों में दीर्घ जीवन प्राप्त की रीति बताई गई है। देखिये, प्रथम मन्त्रमें कहा है:—

भूरग्नये प्राणाय स्वाहा।

पृथिवी लोक में अग्नि मुख्य देवता है, शुद्ध प्राण वायु द्वारा इस अग्नि देव को अनुकूल बनाये रक्खो।

जिस वायु को हम सांस के साथ अन्दर ले जाते हैं उसे प्राण वायु कहते हैं। आङ्गल भाषा में इसीं का नाम ऑक्सीजन गैस (Oxygeon) है। इस प्राण वायु और अग्नि में विशेष सम्बन्ध है। अर्थात प्राण वायु ही हमारे शरीर में अग्नि उत्पन्न करती है। इस लिये शुद्ध प्राण वायु द्वारा शरीर की अग्नि को अनुकूल रखना चाहिये।

फिर वाह्य अग्नि का भी प्रतिदिन सेवन किया करो। वह प्राण वायु के समस्त दोषों को नष्ट करने से उसे शुद्ध और पवित्र बना देगा। इस पृथिवी का भी उचित रीति से उपभोग करो। इस से उत्तम २ अन्नों को प्राप्त करो। जो तुम्हें जीवन प्रदान करने का हेतु है। अतः प्रथम आहुति इस लिये दी जाती है, कि उसके द्वारा भूः लोक का देवता अग्नि प्रज्वलित होकर इस पृथिवी को शुद्ध और पवित्र बनावें, ताकि हम उस पर सुन्दर स्वास्थ्य दायक अन्नादि उत्पन्न करें। इसी तरह वह अग्नि प्राण वायु को पवित्र करें जो हमारे शरीर में अनुकूल अग्नि को उत्पन्न करे।

दूसरा मन्त्र है।—

"भुवर्वायवे अपानाय स्वाहा।"

अन्तरिक्ष लोक में वायु देवता का निवास है। व्यान (अपान) द्वारा इस देवता को अनुकूल बनाये रक्खो।

पृथिवी पर केवल हमारे पांव टिकते हैं, शेष सारा शरीर अन्तरिक्ष में रहता है। इससे स्पष्ट है, कि अन्तरिक्ष का उचित

उपयोग हमारे लिये कितना आवश्यक है। अन्तरिक्ष का देवता वायु है। हम वायु के समुद्र की मछली हैं। वायु ही हमारा जीवन है इस लिये हमें वायु का अच्छी तरह सेवन करना चाहिये। प्रात:, सायं बाहर खेतों में घूमना, खुली जगह में वास करना तथा घरों में भी खिड़की और दरवाजों से वायु का खुला प्रवेश होने देने चाहिये। दूसरी आहुति हमें दोनों समय इसी बात को याद दिलाती है।

अपान (अप+अन) उस वायु को कहते हैं जो उच्छ्वास द्वारा बाहर निकलती है। आङ्गल भाषा में इसे कारबानिक एसिड गैस (Carbonic acid gas) कहते हैं, अपान वायु साधारण वायु के प्रतिकूल गुण रखने वाली वायु है। क्योंकि साधारण वायु जीवन प्रदान करती है और अपान वायु जीवन की ज्योति को बुझाने वाली है। अत: यह प्रतिकूल वायु यदि बाहर न निकाली जाय तो शरीर के अन्दर की वायु और बाहर की वायु में अनुकूलता न रहेगी। पस उच्छ्वास द्वारा अपान वायु को बाहर फेंक कर हम वाह्य वायु और आभ्यन्तर वायु में अनुकूलता रख कर दीर्घ जीवन को प्राप्त करते हैं।

तीसरा मन्त्र है:—

"स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा।"

द्यौ लोक का देवता आदित्य-सूर्य है। सूर्य के प्रकाश के सेवन से व्यान को अनुकूल बनाओ।

द्यौ लोक हम से दूर है। उससे हमारा निकट सम्बन्ध नहीं है। पर उसमें निवास करने वाले सूर्य देव हमें जीवन प्रदान करने के

लिये अपनी किरणों द्वारा हमारे पास आते हैं। उनका अंश हमारे सिर रूपी द्यौ लोक में वास करता है। जिस प्रकार से बाह्य सूर्य का प्रकाश समस्त ब्रह्माण्डमें फैलता है, उसी प्रकार से आभ्यन्तर सूर्य का प्रकाश भी चक्षुओं द्वारा बाह्य जगत में और ज्ञान तन्तुओं द्वारा आभ्यंतर जगत समस्त शरीर में फैलता है। और जिस प्रकार से यह बाह्य सूर्य बाह्य संसार का प्रेरक है, उसी प्रकार से यह मस्तिष्क रूपी सूर्य समस्त शरीरमें प्रेरणा उत्पन्न करता है। यह सारे शरीर में फैलने वाली और प्रेरणा-चेष्टा उत्पन्न करने वाली शक्ति का नाम व्यान है।

जिस प्रकार से सूर्य की किरणें जलों को समुद्र से उठाकर समस्त पृथिवी पर पहुंचाती हैं उसी प्रकार से शरीर में व्यान ❀ शक्ति रक्त को हृदय से उठाकर समस्त शरीर में घुमाती है जबतक शरीर में व्यान ठीक रीति से काम करता रहता है, तभी तक मानो आदित्य के साथ उसकी अनुकूलता बनी रहती है। और शरीर स्वस्थ रहता है। किन्तु इसमें अन्तर आते ही शरीर नष्ट हो जाता है। वेद में लिखा है:—

दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु। अथर्व १४। १। ४७

अर्थ—(सविता) संसार की प्रेरणा उत्पन्न करने वाला सूर्य (ते आयुः) तेरी आयु को (दीर्घम् कृणोतु) दीर्घ करे।

न सूर्यस्य संदृशः मा युयोथा। ऋ० २। ३३। १

अर्थ—सूर्य के प्रकाश से हम कभी पृथक न होवें।

❀ क्यों कि हृदय की चेष्टा से ही रक्त समस्त शरीर में जाता है

पस हमें हवन करते हुए यह विचारना चाहिये कि हम सूर्य के प्रकाश का ठीक तौर से उपयोग कर रहे हैं वा नहीं। हमारे घर में सूर्य का प्रकाश खुला आना चाहिये। और हमें खुली जगह में बैठकर सूर्य का उचित सेवन करना चाहिये। इससे हमारी व्यान शक्ति बलिष्ठ होगी। और आयु बढ़ेगी।

चौथे मन्त्र में इन सारे भावों को इकट्ठा कर दिया गया है। अर्थात् पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ तीन लोक हैं, इनमें अग्नि, वायु और आदित्य तीन देवता निवास करते हैं। हमारे शरीर के अंदर तीन मुख्य प्राण-जीवन शक्तियां हैं,जिनका नाम प्राण, अपान और व्यान है। बाहर के तीन देवों की अनुकूलता से अन्दर की तीन शक्तियों को पुष्ट करके हमें दीर्घ जीवन लाभ करना चाहिये।

ईश्वर परक अर्थ—यह इन मन्त्रों का आधिदैविक अर्थ है। और हवन में यही अर्थ मुख्य हैं। क्योंकि हवन देव यज्ञ (अर्थात् बाहर की दिव्य शक्तियों से उपयोग लेने का कर्म) है। किन्तु इनके ईश्वर परक अर्थ भी हो सकते हैं। ईश्वर देवों का देव-महादेव है।

(१) (भूः) सत्य स्वरूप, सर्वाधार वा प्राणों का प्राण परमात्मा (अग्नये) प्रकाश स्वरूप वा ज्ञान स्वरूप है। वा सर्व व्यापक है। और (प्राणाय) ब्रह्माण्ड का प्राण वा जीवन है। उसकी प्राप्ति के लिये यह सुन्दर आहुति है।

(२) (भुवः) चेतन्य स्वरूप प्रभु (वायवे) बल स्वरूप, समस्त ब्रह्माण्ड को गति देने वाला, चराचर जगत का धारण, पोषण

तथा प्रलय करता और (अपानाय) समस्त दुःखों को दूर करने वाला है। उसी की प्रसन्नता के लिये यह सुन्दर आहुति है।

(३) (स्वः) आनंद स्वरूप प्रभु (आदित्य) अखण्ड और सर्व प्रकाशक तथा (व्यानाय) सर्व व्यापक है। उसी की आज्ञा पालनार्थ यह सुन्दर आहुति है।

(४) (भूर्भुवः स्वः) सच्चिदानंद स्वरूप परमात्मा (अग्नि वायु आदित्येभ्यः) ज्ञान स्वरूप बलस्वरूप और तेज स्वरूप हैं। और ब्रह्माण्ड का प्राण, अपान और व्यान है। उनकी प्रसन्नता तथा प्राप्ति के लिये यह सुन्दर आहुति है।

आरम्भ में मन्त्रों के जो अर्थ दिये गये हैं, उनमें दोनों भावों को मिला दिया गया है। संसार के तीन भाग हैं, व्यक्ति, जगत और विश्व। व्यक्ति में तीन प्राण (जीवन शक्तियां) मुख्य हैं। बाह्य जगत में अग्नि वायु तथा आदित्य (सूर्य का प्रकाश) वही काम करते हैं। और विश्व में परमात्मा स्वयं प्राण, अपान तथा व्यान का काम कर रहे हैं, व्यक्ति जगत का, और जगत विश्व का भाग है। इसलिये विश्व की जीवन शक्ति से जगत को और जगत से व्यक्ति को जीवन लाभ होता है। अतः इन तीनों में अनुकूलता और सहयोग का होना अति आवश्यक है। इसलिये यजमान, आहुतियां, केवल अपने प्राण, अपान आदि की शुद्धि के लिये ही नहीं, किन्तु जगत के प्राण, अपान, व्यान अर्थात् अग्नि, वायु और आदित्य के लिये अर्पण करता है क्योंकि वह जानता है कि मेरी शुद्धि बाह्य जगत की शुद्धि पर निर्भर है।

और इस प्रकार इदन्नमम्॰ का भेद उसपर अच्छी तरह खुल जाता है।

॰ इदन्नमम् का शब्द मनुष्य मात्र को अत्यंत पवित्र शिक्षा देता है कि उसका यज्ञ अर्थात् कोई भी शुभ कर्म किसी स्वार्थ के लिए नहीं, किन्तु संसार मात्र की सेवा के लिए है। हवन कुण्ड केवल इसी अभिप्राय का सूचक है कि प्रत्येक मनुष्य अपने आप को सारी मनुष्य जाति या संसार के साथ जोड़े रखे। वेद का यह मन्त्र कि—

इयं वेदि भुवनस्य नाभि:

हवन कुण्ड या यज्ञ की वेदी को सारे संसार की नाभि कहता है। इस कुण्ड से सब ओर बिना किसी के पक्षपात के सुगंधी पहुंचाकर मनुष्य प्रति दिन यह उच्च शिक्षा अपने सन्मुख लाता है। कि जैसे यह कुण्ड भूगोल का प्रतिनिधि है वैसे ही मेरा वैयक्तिक शरीर, मन आत्मा, अर्थात् मेरा सर्वस्व संसार का प्रतिनिधि होना चाहिये। अर्थात् जैसे पुष्प आकाश में सब ओर सुगंधी फैलाता हुआ अपने अस्तित्व को स्वाहा दर देता है और जैसे कुण्ड में डाली सामग्री प्रमाणु।रूप-होकर आकाशस्थ वायु को सुगंधित कर रही है वैसे ही मेरी सारी शक्तियां प्रभु की विस्तृत रचना के अर्पण रहेंगी और मेरा जीवन यज्ञ-मय तथा सर्व प्रकार के स्वार्थ से रहित रहेगा।

पांचवें मन्त्र में आपः, ज्योति, रस, अमृत, ब्रह्म, भूः भुवः, स्वः और ओ३म् ही परमात्मा के नाम हैं, जो परमात्मा के अनेक गुणों को प्रकट करते हैं। परमेश्वर के गुणानुवाद गाते हुए प्रसन्न चित्त से यह आहुति देनी चाहिये।

मन्त्र का दूसरा भाव यह है कि पहिले मन को शान्त करो, तब तुम ज्योति स्वरूप प्रभु की ज्योति का अनुभव कर सकोगे। उससे तुम्हें अनुपम आनन्द प्राप्त होगा जिसे ब्रह्म आनन्द कहते हैं। तब तुम अमृत अमरपद मुक्ति को प्राप्त करके ब्रह्म में जो सच्चिदानन्द स्वरूप है, और जिसका निज नाम ओ३म् है, अनेक कल्पों तक वास करके अनुपम आनन्द के भागी बनोगे।

---

(१३) दोनों समय आहुति देने के लिये कुछ और मन्त्र

(१) ओं यां मेधां देव गणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥१॥

यजु० ३२। १४

अर्थ—(याम्) जिस (मेधाम्) सात्विक बुद्धि को (देवगणाः) विद्वान लोग (च) और (पितरः) पितर लोग (उपासते) उपासना करते हैं—धारण करते हैं, (तया मेधया) उसी मेधा बुद्धि से माम मुझको (अद्य) आज (अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् (मेधाविनं कुरु) मेधावी बनाइये।

(२) ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रंतन्न आसुव स्वाहा ॥ यजु० अ० ३०। मं० ३

अर्थ— सवितः देव) हे सारे संसार के उत्पादक तथा प्रेरक प्रभु ! (विश्वानि दुरितानि) सम्पूर्ण दुर्गुण दुर्व्यसन और दुःखों को (परासुव) दूर कर दीजिए (यत् भद्रम्) जो कल्याणकारी गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ है (तत्) वह (नः, हमको (आसुव, प्राप्त कराइये।

(३) ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ॥ यजु० ४०।१६॥

अर्थ—(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप परमात्मन्! (अस्मान्) हम सबको (राये) सुखों की प्राप्ति के लिये (सुपथा) अच्छे माग से (नय) चलाइये। (देव) हे देव समस्त दिव्यगुणों को धारण करने वाले प्रभु ! (विश्वानि वयुनानि) जानते हैं। अस्मत्) हमसे (जुहुराणम्) कुटिलता युक्त (एनः) पापकर्म को (युयोधि दूरकर दीजिये। हम (भूयिष्ठाम्) बारम्बार (ते) आपके लिये (उक्तिम्) प्रशंसा स्तुति करते हुए (नमः) आपको नमस्कार (विधेम) किया करें।

व्याख्या।

इन मन्त्रों के भाव स्पष्ट हैं। इनकी विशेष व्याख्या की कोई

आवश्यकता नहीं। यह प्रार्थना मन्त्र है। ऐसे अनेक उत्तम से उत्तम प्रार्थना मन्त्र वेदों में मौजूद हैं। जिन्हें बोलकर आहुति दी जा सकती है।

(१४) पूर्णाहुति

ओं सर्वं वै पूर्णं थ्ं स्वाहा।

इस मन्त्र को तीन वार उच्चारण करके तीन आहुतियां देवें। इन तीन आहुतियों में समस्त सामग्री और घृतादि अग्नि में डाल देना चीहिये।

अर्थ—(१) (सर्वम्) परमात्मा का रचा हुआ समस्त संसार (वै) निश्चय रूप से (पूर्णय) पूर्ण है इस में कोई त्रुटि नहीं है (स्वाहा) यह सुन्दर वचन है।

(२) (सर्वम) यज्ञ की भी सब क्रियायें (वै) निश्चय रूप से (पूर्णम) पूर्ण हो गई हैं। कुछ शेष नहीं रहा।

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

(३) (सर्वम्) सब कुछ (वै) निश्चय रूप से (पूणम्) पूर्ण परमात्मा के अर्पण है।

अर्थ—हे प्रभु। हम सब को आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधि भौतिक दुःखों से शान्ति प्राप्त हो।

परिशिष्ट संख्या १

प्रति दिन हवन करने की समस्त विधियों की विस्तार पूर्वक व्याख्या हो चुकी। अब स्वामी जी ने संस्कार विधि में जो सामान्य प्रकरण लिखा है उसकी कुछ क्रियायें शेष रह जाती हैं, चूंकि संस्कारों के पहिले वा समय २ पर वृहत् हवन करने के लिये उन क्रियाओं की भी आवश्यकता होती है। इसलिये उन क्रियाओं को हम यहां लिख देना आवश्यक समझते हैं।

(१) महाव्याहृति आहुति।

सामान्य होमाहुति के पश्चात् निम्न लिखित मन्त्रों से घृत की ४ आहुतियां देवें।

(१) ओं भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्नमम।

(२) ओं भुवर्वायवे स्वाहा। इदमवायवे इदन्नमम।

(३) ओं स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय इदन्नमम।

(४) ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा।
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः इदन्नमम॥

अर्थ—[१] (भूः) सर्वाधार प्राणों से प्रिय (अग्नये) ज्ञान स्वरूप परमेश्वर के निमित्त यह आहुति देता हूं। यह ज्ञान स्वरूप परमेश्वर के लिये है मेरे लिये नहीं है। अर्थात् पृथिवी लोक तथा उस पर निवास करने वाले अग्नि देव की अनुकूलता के लिये यह आहुति हैं। यह आहुति अग्नि के लिये है, मेरे लिये नहीं है।

[२] (भुवः) दुखों के दूर करने वाले (वायवे) वायु के समान व्यापक परमात्मा के निमित्त यह आहुति देता हूं। इत्यादि अर्थात् अन्तरिक्ष लोक और उसमें निवास करने वाले वायु देव की शुद्धि के निमित्त यह आहुति देता हूं।

[३] (स्वः) सुख स्वरूप तथा (आदित्याय) अखण्ड, प्रकाश स्वरूप ईश्वर के निमित्त, अर्थात् द्यौ लोक तथा उसमें निवास करने वाले सूर्यदेव के निमित्त यह आहुति है।

[४] उपर्युक्त सब गुणों के रखने वाले प्रभु के निमित्त यह आहुति है अर्थात् पृथिवी लोक, अन्तरिक्ष लोक तथा द्यु लोक और उनके वास करनेवाले अग्निदेव, वायुदेव तथा सूर्यदेव की अनुकूलता के निमित्त यह आहुति है। इत्यादि—

(नोट) विस्तारपूर्वक व्याख्या सं० १२ में देखिये।

(२) स्विष्टकृत आहुति।

ओं यदस्य कर्मणो त्यरीरिचं यद्वान्यून मिहाकरम्। अग्नि-ष्टत् स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतुमे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्व प्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्धयित्रे सर्वान्नः कामान् समर्धय स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते इदन्नमम ॥शतपथ १४।६।४।२४

अर्थ—(अस्यकर्मणः) इस कर्म के सम्बन्ध में (यत) जो (अति-अरीरिचं) विधि से अधिक किया गया हो, (यद्वा)

अथवा (इह न्यूनं अकरम्) इसमें कुछ न्यूनता रह गई हो, (सु-इष्टकृत अग्निः) शुभ इच्छाओं को पूर्ण करने वाला प्रभु जो (सर्वं सु-इष्टं विद्यात्) मेरी सब शुभ इच्छाओं को जानता है (तत) इस कर्मको (मे) मेरे लिये (सुहुतम् करोतु) सुहुत करदेवे। (सु-इष्टकृते) शुभ इच्छाओं को पूर्ण करने वाले, (सुहुतहुते) आहुतियों यज्ञों को सुहुत–सफल करने वाले और (सर्व प्रायश्चित्त आहुतीनां) सब प्रायश्चित्त आहुतियों को (कामानां) और सब कामनाओं को सफल करने वाले (अग्नये) प्रभुके लिये (स्वाहा) मैं यह आहुति दे रहा हूं। हे प्रभु ! (नः) आप हमारी (सर्वान् कामान्) सब कामनाओं को (समर्धय) परिपूर्ण कीजिये। (इदं-मम) यह शुभ कामनाओं को पूर्ण करने वाले अग्नि स्वरूप प्रभु के लिए है, मेरे लिये नहीं है।

व्याख्या

प्रत्येक कर्म ठीक २ रीति से ही करना चाहिये, तभी फलदायक होता है। पर मनुष्य से त्रुटि वा अशुद्धि हो जाना स्वाभाविक है, अतः यह आहुति उस त्रुटि वा अशुद्धि की पूर्ति के लिये प्रायश्चित्त रूप से है। इसमें प्रार्थना की गई है कि हे प्रभु हमारे इस यज्ञ में यदि कोई भूल हो गई हो तो आप कृपा करके हमारे इस यज्ञ को सफल कर दीजिये और जिस शुभ इच्छा से यह यज्ञ किया गया है उसे पूर्ण कर दीजिये। क्योंकि हमारा काम तो केवल अपनी बुद्धि और ज्ञान के अनुसार कर्म करना ही है और चूंकि हम अल्पज्ञ हैं इसलिये हमारे उस कर्म

में त्रुटि रह सकती है। उसका फल देना आपका काम है, अतः हम अपने कर्म को आपके अर्पण करके उसकी सफलता के लिये आप से ही प्रार्थना करते हैं।

(४) प्रजापत्याहुति।

ओं प्रजापते स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्नमम॥ ६॥

अर्थ—प्रजा के पालन करने हारे प्रभु के निमित्त यह आहुति है। यह प्रजापति के लिये है, मेरे लिये नहीं।

व्याख्या—इस मन्त्र को मनमें बोल के आहुति देनी चाहिये यहां मौन होकर आहुति देने का मतलब मुख्य क्रियाकी समाप्ति की सूचना है।

(५) प्रधान होम सम्बन्धी ४ आज्याहुतियां

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्ज्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय-इदन्नमम॥१॥ ऋ० ९। ६६। १९

अर्थ—हे सर्वाधार दुःख नाशक, सुख स्वरूप, (अग्ने) प्रकाश स्वरूप भगवान्, (नः आयूंषि) हमारी आयुओं को (पवस) आप पवित्र करते और बढाते हैं। (नः) हमें (ऊर्जम्) बल (च) और (इषं) अन्न (आसुव) प्रदान कीजिये। (दुच्छुनां) राक्षसों को (आरे) दूर (बाधस्व) दबाओ। (स्वाहा) आपके प्रसन्नता केलिये

मैं यह सुन्दर आहुति देता हूं। (इदं) यह आहुति (पवमानाय-अग्नये) पवित्र करने वाले ज्ञान स्वरूप परमात्मा के लिये हैं (इदन्न मम) यह मेरे लिये नहीं है।

व्याख्या—इस मन्त्र में प्रभु से प्रार्थना भी की गई है, और अग्नि के गुण भी बतलाये गये हैं कि हवन की अग्नि आयु को बढाने वाली और बल, तथा बल का साधक अन्न प्रदान करने तथा राक्षसों-रोग कीटाणुओं का नाश करने वाली होती है।

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयम् स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय इदन्नमम ॥२॥ ऋग० ९।६६।२०

अर्थ—(अग्नि) वह ज्ञान स्वरूप प्रभु (ऋषिः) सर्व द्रष्टा (पवमानः) सब को पवित्र करने वाला सबका रक्षक (पांच जन्यः) चारों वर्णों तथा वर्णों से बाहर असभ्य लोगों का भी (पुरोहितः) अध्यक्ष नेता है (तम्)उस (महागयम्)स्तुति के योग्य प्रभु को हम लोग धर्म कर्मकी सफलताके लिये (ईमहे) प्राप्त हों। शेष पूर्ववत।

व्याख्या—इस मन्त्र में ईश्वर तथा नेता के गुण वर्णन किये गये हैं और प्राप्ति की कामना की गई है।

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय इदन्नमम॥३॥ ऋ० ९।६६।२१

अर्थ—(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप प्रभु आप (सु-अपाः) अच्छे कर्मोंके अधिष्ठाता हैं (अस्म) इसमें (वर्चः) तेज (सुवीर्यं) सुन्दर बल प्रदान करके (पवस्व) हमें पवित्र कीजिये और (मयि) मुझ में (रयिं) ऐश्वर्य (पोषं) और पुष्टि (दधत) धारण कीजिये शेष पूर्व वत ॥

व्याख्या—अच्छे कर्मों के करने से ही तेज, बल, पवित्रता ऐश्वर्य तथा पुष्टि प्राप्त करनी चाहिये।

ओं भूर्भुवः स्वः । प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम स्वाहा । इदं प्रजापतये इदन्नमम ॥४॥ ऋ० १० । १२१ । १० ।

अर्थ—हे (प्रजापते) सब प्रजा के पालक परमात्मन ! (त्वत्-अन्य) आप के अतिरिक्त कोई भी (ता विश्वा जातानि) इन सब उत्पन्न हुए जड़ चेतन्य पदार्थों का (नपरि बभूव) नहीं तिरस्कार करता है, अर्थात् आप सर्वोपरि हैं। (यत-कामः) जिस जिस पदार्थ की कामना करते हुए हम लोग (ते जुहुमः) तेरे लिये आहुति देवें (तत नः अस्तु) वह हमारा प्रयोजन पूर्ण हो जिससे (वयम) हम लोग (रयीणाम) ऐश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें। यह आहुति प्रजा के पालक प्रभु की है मेरे लिये नहीं है।

व्याख्या—परमात्मा प्रजा का पालक तथा स्वामी है। सब जड़ चैतन्य पदार्थ उसी ने उत्पन्न किये हैं और वह सर्वोपरि विरा-

जमान है। प्रभुभक्त को उसी के सामने याचना करनी चाहिये! क्योंकि यह सब की धर्मानुकूल कामनाओं को पूर्ण करने वाला है तथा धर्मानुकूल कार्य करते हुए धन कमाना चाहिये, क्योंकि निर्धन रहना भी महापाप है,।

(६) अष्टाज्याहुति।

ओं त्वन्नोऽग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेलोऽअवयासिसीष्ठाः यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत स्वाहा। इदमग्नि वरुणाभ्याम्-इदन्नमम ॥१॥ ऋ० ४। १। ४।

अर्थ—(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप परमात्मन्: (त्वम्) आप (विद्वान्) सब कुछ जानने वाले (यजिष्ठः) अतीव यज्ञ करने वाले (वह्नितमः) अत्यन्त प्राप्ति कराने वाले (शोशुचानः) और अत्यन्त प्रकाशमान-तेजस्वी हैं (वरुणस्य देवस्य) श्रेष्ठ-ग्रहण करने योग्य देव-विद्वान का (हेलोः) अनादर (नः) हम से (अवयासिसीष्ठा) दूर करदीजिये। तथा (विश्वा द्वेषांसि) सब प्रकार के द्वेष के भावों को (अस्मत्) हम से (प्रमुमुग्धि) प्रथक कर दीजिये। (इदं) यह हवि (अग्निवरुणाभ्यां) अग्नि और वरुण के लिये हैं। (इदं न मम) मेरी नहीं है।

व्याख्या—मन्त्रमें श्रेष्ठ विद्वानों का अनादर न करने तथा सब प्रकार के द्वेष के भावों से दूर रहने के लिये प्रार्थना की गई है।

ओं सत्वन्नो अग्नेऽवमो भवोतीनेदिष्ठोअस्या उषसो व्युष्टौ। अवयक्ष्वनो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा। इदमग्नि वरुणाभ्याम् इदन्नमम ॥२॥ ऋ० ४।१।५

अर्थ—(अग्ने) हे तेजस्विन् प्रभो! (सः त्वं) वह आप (ऊती) रक्षण, पालन द्वारा (वः) हमारे (अवमः) समीपवर्ती हैं (अस्याः उषसः) इस उषा-प्रभात के (वि-उष्टौ) विशेष रूप से प्रगट होने पर (नेदिष्टः) अति समीपवर्ती (भव) होजाइये। (नः) हमको (वरुणम) श्रेष्ठ विद्वान (रराणः) प्रदान करते हुए (अवयक्ष्व) प्राप्त कीजिये। हमारे लिये (मृळीकं) सुखकारी ज्ञान को (वीहि) प्रकाशित कीजिये। (नः) हमारे लिये (सुहवः) सुखपूर्वक बुलाने योग्य वा उत्तम पदार्थोंके दाता (एधि) बनें। शेष पूर्ववत।

व्याख्या—यों तो प्रभु हमारा रक्षण पालन करनेसे हर समय हमारे समीप ही है। किन्तु प्रभात के समय हम उसका आसानी से ध्यान द्वारा अनुभव कर सकते हैं। इस मन्त्रमें प्रभु से प्रार्थना की गई है। कि हे प्रभु! श्रेष्ठ विद्वान प्राप्त होते रहें, ताकि हमारा ज्ञान दिन प्रति दिन बढ़ता रहे। और हम जिस समय चाहें ध्यान द्वारा आपका दर्शन कर सकें।

ओं इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय। त्वामवस्युराचके स्वाहा॥ इदं वरुणाय-इदन्नमम ॥३॥ ऋ० १।२५।१९

अर्थ—(वरुण) हे सर्वश्रेष्ठ वरणीय परमेश्वर! (अद्य) आज (इमं) इस (मे हवम) मेरी पुकारको (श्रुधि) श्रवण कीजिये। (च) और मुझे (मृडय) सुखी कीजिये। (अवस्युः) रक्षा का इच्छुक होकर मैं (त्वम्) तेरी (आचके) स्तुति करता हूं।

व्याख्या—मनुष्यको सुख तथा रक्षाके लिये हमेशा परमात्मा ही को पुकारना चाहिये, और किसी को नहीं।

ओं तत्त्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंसमान आयुः प्रमोषी स्वाहा। इदं वरुणाय इदन्नमम ॥४॥

ऋ० १। २४। ११

अर्थ—(वरुण) हे सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर! (यजमानः) यजमान (हविर्भिः) हवियों द्वारा (तत्) जिन अभिलाषा योग्य पदार्थों की (आशास्ते) कामना करता है, (ब्रह्मणा) वेद मन्त्रों द्वारा (वन्दमानः) तेरी वन्दना करता हुआ मैं भी (तत्) उन्हीं उत्तम पदार्थों की (त्वा यामि) आप से याचना करता हूं। (उरु-शंस) बहुत मनुष्यों से स्तुति किये जाने योग्य प्रशंसनीय प्रभु! (अहेडमानः) हमारा अनादर न करते हुए (इह) इस यज्ञ से (बोधि) हमारा अभिप्राय जानकर (नः) हमारी (आयुः) आयु को (मा प्रमोषीः) अपहरण न कीजियेगा। शेष पूर्ववत्।

व्याख्या—यज्ञ में परमात्मा से समस्त उत्तम पदार्थों तथा दीर्घ आयु की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करनी चाहिये।

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञिया पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्का स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः इदन्नमम ॥५॥ कात्यायन श्रौत०। २५। १। ११

अर्थ—(वरुण) हे स्वीकार करने योग्य परमात्मन्! (ये ते) जो वे (शतं) सैकड़ों (सहस्रो) और हजारों (यज्ञियाः) यज्ञ के विषय में (विततः) फैले हुए (महान्तः) बड़े २ (पाशाः) जाल, फांस का रुकावटें हैं (तेभिः) उन से (नः) हम को (अद्य) अब (सविता उत विष्णुः) आपकी प्रेरक और सर्वव्यापक शक्ति और (विश्वे) सब (स्वर्काः) पूजनीय (मरुतः) विद्वान लोग (मुञ्चन्तु) छुड़ावें। (इदं…)

यह आहुति वरुण, सविता और विष्णु नामो वाले परमात्मा तथा विद्वानों के लिये है, मेरी नहीं।

ओं अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्ति पाश्च सत्यमित्व-मयासि। अयानोयज्ञं वहास्यया नो धेहिभेषजꣳस्वाहा। इदमग्नये अयसे इदन्नमम॥६॥कात्यायन श्रौत० २५।११

अर्थ—(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप भगवन्! आप (अयाः) सर्वव्यापक (च) और (अनभिशस्ति पा) पाप रहित पुरुषों की

रक्षा करने वाले (असि) हैं। (इन) वस्तुतः (त्वं) आप (सत्यं) सच्चे प्रकार से (अयासि) सर्वत्र उपस्थित हैं। (अयाः) हे सर्वव्यापक प्रभु! आप (नः यज्ञं) हमारे यज्ञ को (वहासि) सफलता को पहुंचाइये और (अयः) हे सर्वत्र प्राप्त प्रभु! (नः) हमारे में (भेषजं) रोग निवारक शक्ति को (धेहि) धारण कीजिये। (स्वाहा) मैं यज्ञ के निमित्त सब कुछ त्यागन कर सकता हूं (इदन्न···) यह सर्व व्यापक प्रभुके लिये हैं, मेरा नहीं है। परमात्मा सब जगह होने के कारण सब जगह पाप रहित लोगों का पालन तथा हमारे यज्ञों-शुभ कर्मों का रक्षण कर सकते हैं। सदा उन्हीं से प्रार्थना करनी चाहिये।

ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्यव्रते तवानागसोऽदितये स्याम स्वाहा। इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च इदन्नमम ॥ ७ ॥ ऋग० १। २४। १५ ॥

अर्थ—(वरुण) हे स्वीकार करने योग्य भगवन्! (अस्मत) हमसे (अधमम) आलस्य जूआ, मिथ्या भाषणादि अधम, (मध्यमम) राग द्वेष, निन्दा, स्तुति, लोभ, अहंकार आदि मध्यम तथा (उत्तमम) ममता, कीर्ति की सरलता आदि उत्तम प्रकार के (पाशय) बन्धनों को (वि-अव-श्रथाय) अच्छे प्रकार नष्ट कीजिये। (अथ) और(आदित्य) हेअविनासी ईश्वर(वयम्) हम (तव व्रते) तेरे बताये हुए सत्याचरण आदि व्रत को धारण

करते हुए (अदितये) अखण्ड आनन्द की प्राप्ति के लिये-मोक्षानन्द की प्राप्ति के लिये (अनागसः) पाप रहित (स्याम) हो जावें (इदं.........) यह आहुति अखण्डनीय स्वीकार करने योग्य प्रभु के निमित्त है, यह हवि मेरी नहीं है।

व्याख्या—इस मन्त्रमें प्रभुसे प्रार्थना की गई है, कि हे प्रभु! मेरे तमाम बन्धन नष्ट हो जावें और मैं आप के अटल नियमों पर चलता हुआ निष्पाप होकर मोक्षानन्द को प्राप्त कर सकूं।

ओं भवतन्नः समनसौ सचेत सावरे पसौ। मा यज्ञꣳ हिꣳ सिष्टं मा यज्ञ पतिं जात वेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा॥ इदं जातवेदोभ्यां-इदन्नमम॥८॥यजु० ५ । ३

अर्थ—(नः) हमारे मध्य में (समनसौ) उत्तम मन वाले वा समान मन वाले (सचेतसौ) उत्तम बुद्धि वाले (अरेपसौ) पाप रहित स्त्री, पुरुष (भवतम्) हो। (यज्ञम्) यज्ञ का (मा हिंसिष्टम्) लोप न करें, और (मा, यज्ञपतिम्) यजमानों को भी पीड़ा न पहुंचायें। (जातवेदसौ) वेद वेदाङ्गों को पढ़ने पढ़ाने वाले विद्वान स्त्री, पुरुष (अद्य) आज (नः) हमारे लिये अपने उपदेशादि से (शिवौ) कल्याणकारी (भवतम्) होवें।

व्याख्या—सब स्त्री, पुरुषों को उत्तम मन तथा उत्तम बुद्धि वाले होकर, तथा प्रति दिन यज्ञ करते हुए निष्पाप बनना योग्य

है। तथा विद्वान् मनुष्यों का कर्तव्य है, कि अपने उत्तम उपदेशों से लोगों का कल्याण करें।

नोट—इन आहुतियों के पश्चात् दैनिक होम करना चाहिये।

परिशिष्ट संख्या २

संस्कार आदि में, सामान्य विधि आरम्भ करने से पहिले, प्राय: ईश्वर स्तुति प्रार्थना तथा स्वस्तिवाचन और शान्ति पाठ के मन्त्रों का पाठ किया जाता है। वह मन्त्र शब्दार्थ तथा भावार्थ सहित नीचे दिये जाते हैं।

(१) ईश्वर स्तुति प्रार्थना उपासना।

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रन्तन्न आसुवः ॥ १ ॥ यजु० ३०। ३ ॥

शब्दार्थ—हे (सवितः देव) समस्त संसार के उत्पत्ति कर्त्ता तथा प्रेरक परमेश्वर! (नः) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को (परासुव) दूर कर दीजिये और (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारी गुण, कर्म, स्वभावादि हैं (तत्) वह सब (नः) हमें (आसुव) प्राप्त कराइये ॥ १ ॥

भावार्थ—परमेश्वर समस्त संसार का उत्पन्न करने वाला और चलाने वाला है। उसी से प्रतिदिन प्रार्थना करनी चाहिये कि हे प्रभु! हमारे समस्त बुरे गुण कर्म स्वभाव आदि को दूर करके शुभ गुण कर्म आदि हमें धारण कराइये। जिससे हम संसार में सदा सुखी रहते हुए अन्त में मोक्ष पद के भागी बनें।

ओं हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्यजातः पतिरेक आसीत् । सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥ यजु० १३ । ४

शब्दार्थ—(हिरण्य गर्भः) सूर्यादि तेजोमय पदार्थों को अपने गर्भ में धारण करने वाला (भूतस्य) इस उत्पन्न हुए समस्त संसार का (जातः) जनक तथा (एकः) एकमात्र (पतिः) पालक प्रभु (अग्रे) जगत की रचना से पहिले ही (समवर्त्तत) वर्त्तमान (आसीत्) था (सः) वही प्रभु (इमाम पृथिवीं) इस पृथिवी लोक (उत) और (द्याम) द्यौलोक को (दाधार) धारण कर रहा है। (कस्मै) उसी सुख स्वरूप प्रजापति की हम सब को (हविषा) भक्ति पूर्वक (विधेम) उपासना करनी चाहिये।

भावार्थ—माता सन्तान से पहिले ही उपस्थित होती है। इस समस्त संसार को भी जिस जगत जननी ने अपने गर्भ में धारण किया था वह भी जगत की रचना से बहुत पहिले से वर्तमान थी उसी एक जगन्नियन्ताने इस विश्वको पैदाकर इसका पालन-पोषण किया है, और अब भी वही इसे अपनी प्रेममयी गोद में धारण किये हुए है। अतः हम सब को फिर प्रति दिन उसी के चरणों में अपनी भक्ति की भेंट अर्पण करनी चाहिये।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम । ३॥ यजुः २५ ।१३॥

अर्थ—(यः) जो (आत्मदाः) आत्मज्ञान का दाता वा

शरीरों में आत्मा को स्थापन करने वाला (बलदाः) और सब प्रकार के [शारीरिक मानसिक, तथा सामाजिक] बल का देने हारा प्रभु है। (यस्य) जिसकी (विश्वे देवाः) सब विद्वान लोग (उपासते) उपासना करते तथा (यस्य) जिसके (प्रशिषम्) प्रत्यक्ष सत्य स्वरूप शासन को मानते हैं (यस्य) जिसका छाया आश्रय ही (अमृतं) अमृत मोक्ष सुख दायक है (यस्य) जिसके आश्रय का त्यागन ही (मृत्यु) आदि दुखों का हेतु है हम लोग उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) देव की प्राप्ति के लिये (हविषा) आत्मा और अन्तःकरण से (विधेम) भक्ति करें अर्थात आज्ञा पालन में तत्पर रहें।

भावार्थ—परमात्मा ही हमें आत्मिक ज्ञान तथा सब प्रकार के बलों का दाता है वह ज्ञान तथा बलका भंडार है, इसलिये सब विद्वान मनुष्य तथा सूर्य चन्द्रादि देव उसी की उपासना करते और उसी के शासन में चलते हैं। जो मनुष्य उसकी शरण में आजाते हैं वे मुक्त होकर जन्म मरण के चक्र से छूट जाते हैं। और जो उसके आश्रय से मुख मोड़कर अनेक देवी देवताओं तथा जड़ प्रकृति की उपासना में लग जाते हैं, वह बार बार मृत्युके चुंगल में पड़ दुःख उठाते हैं। अतः प्रत्येक मनुष्यको उसी देव की प्रतिदिन उपासना करनी चाहिये और किसी की नहीं।

ओं यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥ यजु० २३ । ३ ॥

अर्थ—(यः) जो (महित्वा) अपने महान सामर्थ्य से प्राण लेने वाले [वनस्पति आदि अचर] और (निमिषतः) नेत्रादि द्वारा चेष्टा करने वाले चर जगत का (एक इत) एक ही (राजा बभूव) राजा है और (यः) जो (अस्य) इस (द्विपद) दो पैर वाले मनुष्यादि और (चतुष्पद.) चार पैर वाले गौ आदि का भी (ईशे) स्वामी है (कस्मै देवाय) उसी सुख स्वरूप सकलैश्वर्य के देने हारे परमात्मा की (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामिग्रीसे (विधेम) उपासना करनी चाहिये।

भावार्थ—परमात्मा चर अचर समस्त संसार का राजा है इसलिये हमें उसी की उपासना करनी योग्य हैं और की नहीं।

ओम् येन द्यौ रुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥ य० ३२। ६॥

अर्थ—(येन) जिस परमात्मा ने (द्यौः) द्यु लोक को (उग्रा)तेजस्वी बनाया है (च) और (पृथिवी) पृथिवी लोक को (दृढा) दृढ़ बनाया है। (येन) जिसने स्वः सुख को वा सूर्य मण्डल को (स्तभितम्) धारण किया हुआ है (येन नाकः) जिसने दुःख रहित मोक्ष को धारण किया है। (यः) जो (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष मध्यवर्ती आकाश में (रजसः) समस्त लोकों को (विमानः) निर्माण करने हारा तथा जानने हारा है (कस्मै) हम लोग उस सुखदायक (देवाय) कामना करने योग्य पर ब्रह्म की प्राप्ति के लिये (हविषा) सब सामर्थ

से (विधेम) विशेष भक्ति करें।

भावार्थ—जो सब लोक लोकांतरों का निर्माता, धर्ता तथा मोक्षादि सब सुखों का दाता परमेश्वर है, हमें उसी की भक्ति करनी चाहिये, अन्य की नहीं।

ओं प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव। यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ ६॥ ऋ० १०। १२१। १०

शब्दार्थ—हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मा, (त्वत् अन्यः) आपके अतिरिक्त कोई दूसरा (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा जातानि) सब उत्पन्न हुए चराचर जगत् को (न) नहीं (परिबभूव) तिरस्कार करता है (यत्कामाः) जिस जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग (ते जुहुमः) आपका आश्रय लेवें, (तत्) वह २ कामना (नः) हमारी (अस्तु) सिद्ध होवे, जिससे (वयं) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें।

भावार्थ—चराचर जगत् को परमात्मा ने ही धारण किया हुआ है वह इसका यथावत पोषण करता है इसीलिए उसका नाम प्रजापति है। हमारी समस्त कामनाओं को भी वही सिद्ध करता है अतः हमें उसी से याचना करनी चाहिये, और से नहीं।

ओं स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥ ७॥ यजु० ३२। १०

शब्दार्थ—(यत्र) जिस (तृतीये) जीव और प्रकृति से परे तीसरे (धामन्) धारण करने हारे परमात्मा में (अमृतम) अमृत्व-मोक्ष को (आनशानाः) प्राप्त होके (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) स्व इच्छा पूर्वक विचरते हैं (सः) वह प्रभु (नः) हमारा (बन्धुः) भाई के समान सुखदायक (जनिता) पिता समान उत्पादक है तथा (सः) वह (विधाता) सब पदार्थों और कर्मफलों का विधान करने वाला है और वह (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) लोक लोकान्तरों और (धामानि) नाम, स्थान और जन्मों को (वेद) जानता है।

भावार्थ—परमात्मा सर्वज्ञ है, उससे कोई बात छुपी हुई नहीं है। वही प्रभु हमारा बन्धु, पिता और विधाता है। मुक्त जीव उसी में निवास करके सब प्रकार के आनन्द को भोगते हैं।

ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ ८ ॥ यजु० ४०। १६

शब्दार्थ—(अग्ने) हे स्वप्रकाश, ज्ञानस्वरूप, सब जगत् को प्रकाश करने हारे (देव) परमेश्वर ! आप (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) उत्तम ज्ञानों व कर्मों और मार्गों को (विद्वान्) जानने हारे हैं। इसलिये (अस्मान्) हमें (राये) विज्ञान, धन और सुख की प्राप्ति के लिये (सुपथा) सन्मार्ग से (नय) ले चलें। और (अस्मत्) हमसे (जहुराणम् नः) कुटिल पापों को (युयोधि) दूर कर दीजिये। इसी लिये हम लोग (ते) आपकी (भूयिष्ठाम्)

बहुत प्रकार से (नमः उक्तिम्) नम्रता पूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा किया कर।

भावार्थ—मनुष्य को सदा नम्रता के साथ प्रभु की स्तुति करते हुए प्रार्थना करनी चाहिए, कि हे प्रकाश स्वरूप प्रभु! आप हमें सदा धर्म मार्ग पर चलाइये, और पाप कर्मों से दूर हटाइये। क्योंकि आपही हैं, जो सब उत्तम तथा निकृष्ट कर्मों को अच्छे प्रकार जानते हैं। हम तो अज्ञानी होने के कारण पाप के कीचड़ में फंसकर दुःख उठाते रहते हैं।

ईश्वर स्तुति,प्रार्थना उपासनाके मन्त्रोंका पद्यार्थ

(श्री० गङ्गासिंह जी आर्य)

सविता देव सकल दुर्गुण गण, करिये हम से शीघ्र सुदूर।
भद्र गुणों से भूषित करके, हमें बनाओ गुण भरपूर ॥१॥
हिरण्य गर्भ था अग्र उपस्थित, सकल सृष्टिपति था प्रसिद्ध।
व्योम भूमि के उस धर्त्ता की, करें सर्व हम सेवा सिद्ध ॥२॥
जो है आत्म शक्तिदा बलदा; करें देव जिसका यशगान।
जिसकी छाया अमर तत्व है, करें भक्ति रस उसका पान ॥३॥
जो निज महिमा से राजा है, स्थावर जङ्गम जग का एक।
जो नर,पशु,पत्ती का पति है, करें उसी का ध्यान विवेक ॥४॥
जिससे उग्र,भानु[द्यौ] भूदृढ़ हैं,जिसमें आनन्द है वा मुक्ति।
जो है नभ में पिंड सजाता, करे उसी की भक्ति सु-उक्ति ॥५॥
प्रजापते तुमसा नहीं कोई, अन्य सकल जग-पति परि-पूर्ण।
पूर्ण कामना करो हमारी, और बनें हम वैभव पूर्ण ॥६॥

वही बन्धु,जननी व विधाता,जाने वह सब धाम और देश।
उसमें सारे देव मुमुक्षु , करें अमर पद को प्रवेश ॥७॥
अग्ने ! वैभव पथ पर ले जा, सकल कर्म के ज्ञाता आप।
हमसे कुटिल पाप हर लीजे, करें ओम् का नमनालाप ॥८॥

२—स्वस्ति वाचनम्।

स्वस्ति शब्द का अर्थ है, (सु) उत्तम (अस्ति) होना वा रहना, अर्थात् अच्छा-नेक बनना, उत्तम प्रकार से रहना सहना, दूसरों के साथ उत्तम व्यवहार करना, ऐसे कर्म करना, जिनसे मनुष्य के गुण, कर्म, स्वभाव उत्तम होते चले जायें, इत्यादि। इन मन्त्रों में ऐसे ही भाव प्रगट किये गये हैं, जिन पर विचार करने से मनुष्य का जीवन उत्तम बनसकता है।

अतः इन मन्त्रों का अर्थ सहित पाठ करना चाहिये। बिना अर्थ समझे केवल उच्चारण मात्र से कोई लाभ नहीं है।

ज्ञान स्वरूप प्रभु की स्तुति।

१—अग्नि मीले पुरोहितं यज्ञस्य देव मृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥ ऋ० १।१।१॥

शब्दार्थ—(अग्निम्) ज्ञान स्वरूप प्रकाश स्वरूप परमेश्वरकी (ईले) मैं स्तुति करता हूं। जो (पुरो-हितम्) हम सब भक्तों की दृष्टि के सामने रहते हैं। तथा सृष्टि के आरम्भ में भी सब से पहिले प्रकाशित हुए थे। जो (यज्ञस्य देव) सृष्टि रूपी महान् यज्ञ के रचयिता तथा (ऋत्विजम्) इस यज्ञ को ऋतु ऋतु के, समय समय के अनुसार चलाने वाले हैं। (होतारम्) समस्त वांछित

पदार्थों के दाता और (रत्न धातमम्) सांसारिक सुन्दर तथा उपयोगी पदार्थों, तथा मोक्षादि रत्नों के धारण करने वाले हैं।

भावार्थ—हे ज्ञान स्वरूप प्रभु! मैं आपकी स्तुति करता हूं। आप सृष्टि के आरम्भ में सबसे पहिले प्रकाशित हुए थे और आप ही भक्तजनों की निगाहों के सामने उपस्थित रहते हैं। आप ने ही यह सृष्टि रूपी महान् यज्ञ रचा हुआ है और इस यज्ञ को आप समय समय के अनुसार ही चला रहे हैं। आप ही हमें समस्त सुखदायी पदार्थ प्रदान करते हैं और समस्त सांसारिक तथा पारलौकिक सुखदायी वहु मूल्य पदार्थों को धारण करने वाले हैं।

पिता पुत्र का भाव

(२) स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव सचस्वा नः स्वस्तये ॥ ऋ० १-१-६

शब्दार्थ—(अग्ने) हे ज्ञान स्वरूप परमात्मन्! (सः) ऊपरोक्त गुणों वाले आप (न) हमारे लिये, (सूनवे) पुत्र के लिये (पिता-इव) पिता के समान (सु-उप-अयन) आसानी से प्राप्त होने योग्य (भव) हूजिये। (नः सचस्व) हमें अपने साथ जोड़िये (स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये।

(भावार्थ) हे प्रभु! ऐसी कृपा कीजिये, कि जिस प्रकार से पुत्र, सहज ही में अपने पिता को प्राप्त करके, पिता की गोद में बैठ कर सुखी होता है, उसी प्रकार से हम भी सहज ही में आप को प्राप्त करके कल्याण के भागी बनसकें।

ईश्वर की कल्याण कारिणी विभूति ।

(३) स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्या-दितिरनर्वणः स्वस्ति द्यावा पृथिवी सुचेतुना ॥
ऋ० ५-५१- १

शब्दार्थ—(भगः) हे भगवान् ! (अश्विना) समस्त जोड़े जैसे स्त्री, पुरुष;दिन, रात; सूर्य और चन्द्रमा;जल और अग्नि इत्यादि (नः) हमारा (स्वस्ति मिमीताम्) कल्याण करें। हमें (अदि-ति देवी) प्रभु के अखण्डनीय प्रकाशित सृष्टिनियम(अन-अर्वणः) हम चेष्टा हीनों के लिये; (स्वस्ति) शुभ कर्मों के लिये उत्साहित करने वाले हों। (पूषा) हे सृष्टि का पालन पोषण करने वाले प्रभु। (असुरः) मेघ (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण को (दधातु) देने वाले हों। (द्यावा पृथिवी) द्यौ, लोक और पृथिवी लोक तथा पिता माता (सु-चेतुना) उत्तम प्रकाश तथा ज्ञान से (स्वस्ति) कल्याण कारक हों —।

भावार्थ—हे ऐश्वर्य के स्वामी प्रभु ! संसार के समस्त जोड़े आप ने हमारे ही कल्याण के लिये बनाये हैं। हे अखण्डनीय प्रभु। आप के नियम, जो जड़ तथा चेतन्य सृष्टि में कर रहे हैं, अखण्डनीय हैं। और हम चेष्टाहीनोंको हमारे कल्याण के लिये सदा शुभ कर्म ही करने की प्रेरणा करते हैं। क्योंकि जब यह ज्ञान हो जाता है, कि सृष्टि नियम यह है, कि शुभ कम करने वालों को ही सुख प्राप्त हो सकता है, अन्यथा नहीं और सुख की अभिलाषा प्रत्येक प्राणी रखता है, तो इससे हमें सुख प्राप्ति के

हेतु नेक काम करने की प्रेरणा मिलती है। आप सृष्टि के पालन पोषन करने वाले हैं। और आपने मेघों को इसी लिये उत्पन्न कियाहै, कि वह अन्नों को उत्पन्न करके संसार का कल्याण करें। द्यौ लोक वा पिता से हम प्रकाश वा ज्ञान प्राप्त करें और पृथिवी वा माता से हम प्रेम करना सीखें।

सब पदार्थ प्रशंसा के योग्य हैं।

(४) स्वस्तये वायु मुपब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः। बृहस्पति सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तुनः॥ ऋ० ५। ५१। १२

शब्दार्थ—हम (स्वस्तये) कल्याण के लिये (वायुं) वायु की (उप-ब्रवामहै) भली प्रकार प्रशंसा करते हैं। और (सोमं) जल की भी (स्वस्ति) कल्याण के लिये स्तुति करते हैं, (यः)जो (भुवनस्य पति) सारे भुवन-विश्व का पालन हार है। (सर्व गणं) सब गणों-समूहों की, तथा (बृहस्पति) सब से बड़े पालनहार वा वाणी के स्वामी परमेश्वर की भी (स्वस्तये) कल्याण के निमित्त स्तुति करते हैं! और प्रार्थना करते हैं, कि हे नाथ! (आदित्या सः) बारह आदित्य अर्थात बारह मास (नः)हमारे लिये (स्वस्तये) कल्याण के लिये (भवन्तु) हों।

भावार्थ—वायु के बिना हम एक दम भी जीवित नहीं रह सकते। और जल भी भुवन का पालन करता है! क्योंकि अन्न भी जल से ही उत्पन्न होता है। इस लिये यह दोनों पदार्थ प्रशंसा के योग्य हैं। जीवों के अनेक गण-समूह हैं, जैसे गौवों

का एक गण है, अश्वों का दूसरा इसी प्रकार से मनुष्यों का भी एक गण है, यह सब ही गण प्रशंसा के योग्य हैं, क्योंकि उनसे भी हमें अनेक सुख प्राप्त होते हैं। इन सब का सब से बड़ा पालन हार वा वाणी के स्वामी प्रभु की तो हमें कल्याण के लिये सदा स्तुति करनी चाहिये। क्योंकि उसने हमारे कल्याण के लिये प्रशंसनीय गुणयुक्त समस्त पदार्थों को उत्पन्न किया है, तथा हमें वेद वाणी द्वारा उन पदार्थों को उपयोग में लाना भी सिखलाया है। उसी की कृपा से हम बारहों मास सदा सुख पूर्वक रह सकते हैं।

कल्याण के लिये प्रार्थना

(५) विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्नि स्वस्तये। देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः॥ ऋ० ५।५१।१३॥

शब्दार्थ—(विश्वे देवाः) सब दिव्य गुण युक्त पदार्थ (नः) हमारे लिये (अद्या) आज (स्वस्तये) कल्याण कारी हों। (वैश्वानरः) विश्व का नेता (वसुः) सब में बसने वाला तथा सब को अपने में बसाने वाला (अग्निः) ज्ञान स्वरूप परमात्मा (स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये हो (ऋभवः देवा) मेधावी विद्वान (अवन्तु) हमारा (स्वस्तये) कल्याण कर तथा (रुद्रः) दुष्टों को दण्ड देकर रुलाने वाला राजा वा परमेश्वर (नः) हमें (अहंसः) पाप कर्मों से (पातु) बचा कर (स्वस्ति) हमारा कल्याण करे।

भावार्थ—हम संसार के पदार्थों का उचित रीति से उपयोग करें, तो वह सभी हमारे लिये कल्याण कारी हैं। क्यों कि वह सभी (देवाः) दिव्य गुणों से युक्त है। इस विश्वका नेता (अग्नि) ज्ञान स्वरूप प्रभु जिसमें यह सारा ब्रह्माण्ड बसा हुआ है, वा भौतिक अग्नि जो सारे संसार में व्यापक हैं वह भी कल्याणकारी है। अज्ञान के कारण ही हम दुःख उठाते हैं और हमारे उस अज्ञान को मेधावी विद्वान् ही दूर करके हमारी समस्त दुःखों से रक्षा कर सकते हैं। पापों से हमारी रक्षा राजा वा परमात्मा करते हैं क्यों कि वह रुद्र अर्थात दण्ड द्वारा पापियों को सन्ताप देने वाले हैं। उसके दण्ड से डर कर ही हम पापोंसे बच सकते हैं, इसलिये रुद्र का यह दण्ड भी हमारे लिये कल्याणकारी ही है।

(६) स्वस्ति मित्रा वरुणा स्वस्ति पथ्येरेवति । स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥ऋ० ५।५१।१४

शब्दार्थ—(अदिते) हे अखण्डनीय प्रभु। (नः) हमारे लिये (मित्र वरुण) मित्र और वरुणवायु और जल (स्वस्ति) कल्याण कारी हो; (स्वस्ति पथ्ये) धन युक्त मार्ग (स्वस्ति) कल्याण कारी हो; (इन्द्रः) सूर्य तथा (अग्निः) अग्नि को हमारे लिये (स्वस्ति कृधि) हमारे लिये कल्याण कारी कीजिये।

भावार्थ—अखण्डनीय प्रभुके अखण्डनीय प्राकृतिक नियमों के अनुसार हम जल वायु को हवन यज्ञादि द्वारा सुखदायक बना सकते हैं। सूर्य तथा अग्नि का भी हमें प्रति दिन सेवन करना

योग्य है, क्योंकि वह भी कल्याणकारी पदार्थ है। जिन मार्गों से हम धनोपार्जन करते हैं, वह मार्ग भी कल्याणकारी होने चाहिये। अर्थात झूठ, बेईमानी तथा अन्याय से धन कमाना योग्य नहीं क्योंकि इन कर्मों से हमारे आत्मा का अकल्याण होता है। अर्थात् वह अधोगति को प्राप्त हो जाता है।

सत्सङ्ग से कल्याण मार्ग की प्राप्ति।

(७) स्वस्ति पन्था मनुचरेम सूर्या चन्द्रमसा विव-पुनर्ददताऽघ्नता जानता सङ्गमे महि॥ ऋ० ५।५१।१५

शब्दार्थ—(स्वस्ति पन्थाम्) कल्याणकारी मार्ग पर (अनु-चरेम) हम विद्वानों के पीछे चलें। (सूर्या चन्द्रमसाविव) जिस प्रकार से सूर्य और चन्द्रमा चलते हैं (पुनः) फिर (ददता) दान शील (अघ्नता) अहिंसक (जानता) विद्वानों के साथ (सं-गमे-महि) सगंति किया करें।

भावार्थ--हमें सदा कल्याणकारी पन्थ—धर्म मार्ग पर ही दूसरों अपने से बड़ों तथा विद्वानों के पीछे चलना योग्य है अधो-गति की तरफ लेजाने वाले पाप मार्ग पर नहीं, और जिस प्रकार से सूय और चन्द्रमा अपने निश्चित मार्ग से कभी विचलित नहीं होते, उसी प्रकार से हमें भी धर्म मार्ग से कभी विचलित नहीं होना चाहिये। पर वह कल्याण कारी मार्ग हमें मिले क्यों कर! मन्त्र बतलाता है कि धर्म, भक्ति, दान,शील, अहिंसक, वि-द्वानों के सत्सङ्ग से ही हमें कल्याणकारी मार्ग प्राप्त हो सकता है।

विद्वानों के उपदेश की कामना।

(८) ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानाँ मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः। तेनो रासन्ता मुरुगाय मद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ऋ० म० ७ अ० ३ मं० ७

शब्दार्थ—(ये) जो (यज्ञियानां—देवानां) यजनीय पूजनीय विद्वानों के भी (यज्ञियाः) पूज्य हैं, (मनोः यजत्राः) जो सदा मननशील विद्वानों का सत्सङ्ग करने वाले हैं, (ऋत-ज्ञाः) सत्य ज्ञान के ज्ञाता होने के कारण (अमृताः) मृत्यु के भय से रहित हैं, (ते) वह सब विद्वान (नः) हमें (अद्य) आज (उरुगायम्) कीर्तित ज्ञान का (रासन्ताम्) उपदेश करें। हे विद्वान लोगो! (यूयं) आप सब (सदा) सब कालमें (स्वस्ति भिः) उपदेशादि कल्याण कारी पदार्थों से (नः) हमारी (पात) कुकर्मादि से रक्षा किया करें।

भावार्थ—हमें सदा ऊंचे दर्जे के विद्वानों से उपदेश ग्रहण करना चाहिये और विद्वानों को भी योग्य है कि हम लोगों को कुकर्मों से बचाने तथा धर्म पथ पर चलानेके लिये सदा उपदेश देते रहा करें।

आदित्य ब्रह्मचारियों की प्राप्ति।

(६) येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः उक्थशुष्मान् वृषभरान्त् स्वप्नसस्तां आदित्यां अनुमदा स्वस्तये॥ ऋ० १०।६३।३

शब्दार्थ—(येभ्यः) जिनके लिये (माता पृथिवी (मधुवत)

मधु के समान स्वादिष्ट (पयः) दूध जल को (पिन्वते) बहाती हैं और (अद्रिबर्हाः)मेघों से ढका हुआ (अदिति द्यौः) अखण्डनीय द्यौ-लोक-सूर्य (पीयूषं) अमृत के समान जल को वर्षाता है (तान) उन (उक्थ-शुष्मान्) प्रतिष्ठा के योग्य बल वाले (वृष-भरान्) धर्म के रक्षक (सु-अप्नसः) सुकम करने वाले आदित्य ब्रह्मचारियों को (स्वस्तये) कल्याण के लिये (अनुमदा) प्राप्त कराइये।

भावार्थ—सफल जीवन उनका है जो ४८ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य को धारण करके आदित्य ब्रह्मचारी बनते, और प्रशंसा के योग्य बल को प्राप्त करके स्वयं सुकर्म करते हुए धर्म की रक्षा करते हैं। मानो ऐसे ही ब्रह्मचारियों के निमित्त माता दूध तथा पृथिवी माता स्वादिष्ट जल बहाती है, और मेघों से ढका हुआ द्यौ लोक मेंह बरसाता है। हे प्रभु! हमारे कल्याण के लिए ऐसे आदित्य ब्रह्मचारी हमें सदा प्राप्त होते रहें।

मुक्ति प्राप्ति।

(१०) नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः। ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये॥ ऋ० १०। ६३। ४

शब्दार्थ—(नचक्षसः) मनुष्यों के कर्मों का निरीक्षण करने वाले (अनि-मिषन्तः) आलस्य रहित, (अर्हणाः) पूजनीय, (देवासः) विद्वान् लोग (बृहत्-अमृतत्वम्) बड़े अमृत पद को (आनशुः) प्राप्त हो चुके हैं। वे (ज्योति रथाः) ज्ञान ज्योति के

रथ पर चढ़कर (अहिमाया) अदम्य बुद्धि मुक्त (अनागसः) पाप रहित (दिवः) प्रकाशयुक्त (वर्ष्माणं) ऊंचे लोक को (वसते) प्राप्त करते हैं। (स्वस्तये) वह भी हमारा कल्याण करें।

भावार्थ—मुक्ति ही कल्याण की पराकाष्ठा है। वह मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है। इस बात का उत्तर इस मन्त्र में दिया गया है। धर्मात्मा मनुष्यों के कर्मों को देखते रहने, और तद-नुसार आलस्य रहित होकर कर्म करने वाले, तथा पाप से शून्य, ज्ञान रथ पर चढ़कर फिरने वाले, पूज्य विद्वान् जिनकी बुद्धि ससार के भ्रम जाल में नहीं फंसती, वह उस अमरत्व के उत्कृष्ट दिव्य लोक को प्राप्त होते हैं। ऐसे जीवन मुक्त विद्वान् हमारा कल्याण करें।

वैभवशाली विद्वानों का आह्वान।

(११) सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुर परिह्वृता दधिरे दिवि त्तयम्। तां आ विवास नमसा सुवृद्धि भि-र्महो आदित्यां अदितिं स्वस्तये॥ ऋ० १०।६३।५॥

शब्दार्थ—(ये) जो विद्वान लोग (सम-राज) सांसारिक वैभव से भली प्रकार चमकते हुये (शु-वृधः) और ज्ञानादि में अच्छे प्रकार वृद्धि प्राप्त करते हुए (अपरि-ह्वृताः) कुटिलता रहित हो कर (यज्ञम-आययुः) यज्ञको प्राप्त होकर (दिविः) दिव्य लोकों में (त्तयम दधिरे) निवास करते हैं (तान्) उन (महः-आदित्यान्) आदित्य के समान महा तेजस्वी पुरुषों को तथा (अदिति) उनके अखण्ड ब्रह्मचर्य, तेजस्वता आदि गुणों को (नमसा) नमस्कार

करें। तथा (सुवृक्तिभिः) अच्छी स्तुति द्वारा (स्वस्तये) अपने कल्याणों के लिये (आ-विवास) उनका आह्वान करें।

भावार्थ—जो लोग राज्यादि सांसारिक वैभव को प्राप्त, और आत्मिक ज्ञानादि में भी उन्नति करते हुए, तथा समस्त कुटिलताओं को त्याग के यज्ञादि कर्मों में तत्पर रह कर स्वर्ग वा मुक्ति आदि दिव्य लोकों को प्राप्त करते हैं, उन तेजस्वी विद्वानों तथा उन के तेजस्वी आदिगुणों के लिये हमारे मन में पूज्य बुद्धि होनी चाहिये। तथा अपने कल्याण के लिये ऐसे विद्वानों की स्तुति करते हुए उन्हें कभी २ सत्सङ्ग के लिये आह्वाना करना योग्य है।

कौन अच्छा यज्ञ करा सकता है।

(१२) को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन। को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये॥ ऋ० १०।६३।६

शब्दार्थ—(विश्वे देवासः) हे समस्त विद्वानों! और (मनुषः) मनन शील पुरुषों! (यति स्थान) जितने तुम यहां उपस्थित हो सब मिलकर सोचो कि (कः) कौन (वः) तुम लोगों के बीच में (स्तोमं राधति) स्तोत्र को बनाता गाता है। (यम जुजोषथ) जिसे तुम पसन्द करते वा सेवन करते हो। और (तुवि जाताः) विस्तृत कीर्ति वालों (कः) कौन (वः) तुम्हारे बीच में (अध्वरम्) हिंसा रहित कर्म यज्ञको (अरंकरत) अलंकृत करता है (यः)जो (वः) हमसे (अहंः) पापों को (अति) हटाकर (स्वस्तये) कल्याणके लिये (पर्षत्) पार पहुंचा सकेगा।

भावार्थ—यज्ञादि कराने के लिये ऐसा विद्वान पसन्द करना चाहिये जो स्तोत्रों के गाने तथा पापों के नष्ट करने वाले यज्ञों के कराने में सिद्धहस्त हो !

आदित्य ब्रह्मचारियों की पूजा ।

(१३) येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्नि र्मनसा सप्त होतृभिः । त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त्त सुपथा स्वस्तये ॥ ऋ०-१०-६३-७

शब्दार्थ—(समिद्ध-अग्निः) हवन अग्नि को प्रज्वलित करने वाला (मनुः) मनन् शील विद्वान (येभ्यः) जिनके लिये (सप्त होतृभिः) सात होताओं सहित (मनसा) मन से (प्रथमाम) सबसे पहिले (होत्राम् आ-येजे) पूजा करता है (त आदित्याः) वे आदित्य ब्रह्मचारी (अभय) अभय को (शर्म) सुख को (यच्छत) प्रदान करें और (स्वस्तये) कल्याण के लिये (नः सुपथा) हमारे धर्म मार्गों को अपने उपदेशादि से (सुगा कर्त) सुगम करें ।

भावार्थ— यजमान को चाहिये, कि बड़े२ यज्ञों में सब से प्रथम आदित्य ब्रह्मचारियोंका आदर सत्कार समस्त होताओं सहित मन से करे और उनसे प्रार्थना करे कि हे ब्रह्मचारियो आप हमें ऐसा उपदेश करो जिससे हम धर्म मार्ग पर सुख और निर्भयता के साथ सुगमता से चल सकें ।

(नोट) सप्त होता का तात्पर्य दो श्रोत्र, दो नेत्र, दो नासिकायें तथा एक मुख भी हो सकता है अर्थात सप्त होताओं सहित मन

से सत्कार करने का मतलब जाहिर बातिन दोनों से सत्कार करना है। मुख से सत्कार करना, मीठी वाणी बोलना है, आंखों से सत्कार प्रेम दृष्टि से देखना, कानों से सत्कार, इनके उपदेशों को कान लगाकर सुनना, तथा नाकसे सत्कार इनका माथा आदि सूंघना है।

विद्वानों का कर्तव्य ।

(१४) ओं य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः । ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥ ऋ० १०।६३।८

शब्दार्थ— (ये) जो (प्रचेतसः) उत्तम ज्ञान वाले (मन्तवः) मनन शील विद्वान (स्थातु) स्थावर और (जगतः) जङ्गम, समस्त संसार को भली प्रकार जानने के कारण (विश्वस्य भुवनस्य ईशिरे) सारे भुवन के मानों स्वामी बने हुए हैं (ते देवासः) वे विद्वान (नः) हमें (कृतात-अ-कृतात एन सः) किये हुए और न किये हुए पाप से (परि) हटा कर (अद्य) आज (स्वस्तये) कल्याण के लिये (पिपृत) हमारी रक्षा करें।

भावार्थ—स्थावर तथा जंगम जगत का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके ही मनुष्य भुवन का स्वामी बन सकता है। ऐसे विज्ञानियों का कर्तव्य उपदेशों द्वारा मनुष्यों को किये हुए और न किये हुए पापों से छुड़ा कर उन का कल्याण करता है, न कि नये २ नाशकारी यन्त्रोंका आविष्कार करके मनुष्य जाति का अनिष्ट करना।

द्विजातियों के कर्तव्य।

(१५) ओं भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम। अग्निम् मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावा पृथिवी मरुतः स्वस्तये।" ऋ० १०।६३।६

शब्दार्थ (भरेषु) संकटों वा संग्रामों में (सुहवे) आसानी से पुकार सुनने वाले (इन्द्रम्) राजा वा ईश्वर को (हवामहे) अपनी रक्षा के लिये हम बुलावें। (अहो-मुचं) धर्मोपदेश द्वारा पापों से छुड़ाने वाले (सुकृतम्) श्रेष्ठ कर्म करने वाले (दैव्यं-जनम्) विद्वान मनुष्य को उपदेशादि के लिये बुलावें। (भगं*) अभ्युदय की (सातये) प्राप्ति तथा (स्वस्तये) कल्याण के लिये (अग्निम्) अग्नि(मित्रम्) सूर्य (वरुणम) वर्षा जल (द्यावा-पृथिवी) द्यौलोक पर्यन्त सूर्य अग्नि, वायु तथा जल आदि जितनी भौतिक शक्तियां हैं, उनका ज्ञान प्राप्त करना तथा उन से उपयोग लेना चाहिये।

समुद्र-यात्रा-नौका कैसी होनी चाहिये।

(१६) सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माण मदितिं सुप्रणीतिम्। दैवीं नावँ स्वरित्राम नागसमस्रवन्तीमा रूहेमा स्वस्तये॥ ऋ० १०।६३।१०

शब्दार्थ—(सुत्रामाणम्) अच्छे प्रकार रक्षा के साधनों से

*भगं धातु का अर्थ है उन्नति, अभ्युदय, महानता, महत्व, विशेषता, यश, प्रताप, सुन्दरता, उत्तमता, प्रीति सद्गुण नीति, धर्म, प्रयत्न, पुरुषार्थ, स्वतन्त्र, बल, इत्यादि।

युक्त (पृथिवीम्) विस्तार वाली-खूब लम्बी चौड़ी (द्याम)प्रकाश युक्त (अन्न-एहसं) उपद्रव रहित-हिंसा रहित (सु-शर्माणं) सब प्रकार से सुख देने वाली-स्वस्थ स्थान वाली (अदितिम्) न टूटने वाली (सु-प्रणीतिम्) सु निर्मित-जो अच्छे प्रकार बनाई गई हो (सु-अरित्राम्) सुन्दर यन्त्रों से युक्त (अनागसम) दोषरहित (असवन्तीम) छिद्र रहित (दैवीम् नावम्) दिव्य नौका पर (स्वस्तये) कल्याण के लिये (आ-रुहेम) चढ़ें ।

भावार्थ—हमें अपने कल्याण के लिये समुद्र यात्रा भी करनी चाहिये पर जिस दिव्य नौका-जहाज पर चढ़कर हम समुद्र यात्रा करें वह कैसी हो वही इस मन्त्र में बतलाया गया है । उस नौका में निम्न गुण अवश्य होने चाहियें ।

(१) वह खूब बड़ी हो, जिसमें बहुत से मनुष्य सवार होसकें और बहुतसा सामान भी लादा जा सके ।

(२) उस में वायु और प्रकाश का उत्तम प्रबन्ध हो ।

(३) उसमें सब प्रकार का सुख मिल सकें ।

(४) उसमें चलाने के लिये चप्पू आदि सुन्दर यन्त्र लगे हों ।

(५) उसमें छिद्र आदि न हों और अच्छे कारीगरों द्वारा ऐसी दृढ बनाई गई हो कि टूट कर डूब जाने का भय न हो । और उसमें प्राण रक्षक नौकाये (Life boats) आदि रक्षा के साधन भी उपस्थित हों ।

पूज्य विद्वानों का अभिनन्दन ।

(१७)विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो

दुरेवाया अभि ह्रुतः । सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥ ऋ० १० । ६३ । ११

शब्दार्थ—(विश्वे यजत्रा) हे समस्त पूज्य-सत्सङ्ग के योग्य विद्वानो ! (अधि-वोचत) हमें उपदेश करके (अभिहुतः) नाश करने वाली (दुःइवायाः) दुर्गति से (त्रायध्वम्) हमारी रक्षा कीजिये। और (देवाः) हे विद्वानों ! हम लोग, (वः) तुम (शृण्वतः) हमारी प्रार्थना सुनने वालों को (सत्यया) सच्ची तथा (स्वस्तये) कल्याण के लिये (हुवेम) पुकारते हैं।

भावार्थ—पाप के मार्ग पर चलने से नाश ही नाश होता है अतः विद्वानों-नेताओं का कर्तव्य है, कि लोगों को उपदेशों द्वारा दुर्गति से बचायें। और जनता का भी कर्तव्य है, कि विद्वानों की, सच्ची और उनकी विद्वता के योग्य, खूब प्रशंसा किया करें। झूठी प्रशंसा करके उन्हें खुशामद पसन्द न बनाया करें।

यज्ञ से निरोगता और पाप-बुद्धि का नाश।

(१८) ओं अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः । आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥ ऋ १० । ६३ । १२

शब्दार्थ—(देवाः) हे विद्वानों !) अमीवाम्) हमारे रोगों को (अप) दूर कर दीजिये। (विश्वाम) सब मनुष्यों की (अनाहुतिम) यज्ञ न करने की बुद्धि को (अप) दूर कर दीजिये। (अरातिम) लोभ बुद्धि को, (अघायतः) पाप करनेवाली (दुर्विंत्राम) दुष्ट बुद्धि को (द्वेषः) द्वेष भावको (अस्मत्) हमसे

(आरे) दूर (अप- युयोतन) भगा दो और (नः) हमें (स्वस्तये) कल्याण के लिये (उरु-शर्म) बहुत सुख (यच्छत) प्रदान करो।

भावार्थ—हे विद्वान लोगो! हमें ऐसा उपदेश दीजिये, जिस से हम लोग लोभ मोह पाप की इच्छा तथा द्वेष भाव को त्याग कर सदा यज्ञ किया करें। जिस से हमारे सब रोग दूर होकर हम परम सुख को प्राप्त हों।

विद्वानों के उपदेशानुसार धर्म–मार्ग पर चलना।

(१६) अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि। यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये॥ ऋ० १०।६३।१३

शब्दार्थ—(आदित्यासः) हे आदित्य ब्रह्मचारी विद्वानों तुम! (यम) जिन मनुष्यों को (विश्वानि-दुरितानि) समस्त दुर्गुणों, दुष्कर्मों तथा दुर्भावों से (अति) हटा कर (स्वस्तये) कल्याण के लिये (सुनीतिभिः नयथ) सुनीति युक्त मार्ग से चलाते हो (सः) वह (विश्वः मर्त्तः) सब मनुष्य (अरिष्टः) सब दुःखों से छूट कर (एधते) उन्नति करते हैं, और (धर्मणःपरि) धर्म कार्यों को करने के पश्चात् (प्रजाभिः)पुत्रपौत्रादिकों से (प्रजायते) फलते फूलते हैं।

भावार्थ—विद्वानों के उपदेशानुसार धर्म मार्ग में चलने से ही मनुष्य समस्त दुःखों से रहित हो कर फलता फूलता है।

शरीर रूपी रथ।

(२०) यं देवासोऽवथ वाज सातौ यं शूरसाता मरुतो

हि ते धने। प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमारुहेमा स्वस्तये ॥ ऋ० १०-६३-१४

शब्दार्थ—(देवासः मरुत) हे दिव्य प्राणों ! (वाजसातौ) ज्ञान प्राप्ति के साधन, (शूरसाता) भौतिक-शारीरिक बल प्राप्ति के साधन, (य) जिस शरीर रूपी रथ की (अवथ) तुम रक्षा करते हो, उस (इन्द्रसानसिम) इन्द्र-जीवात्मा के सेवनीय, (प्रातः-यावानम) प्रातः काल से ही चलने वाले (रथम) शरीर रूपी रथ पर हम लोग (अरिष्यन्तम) हानि रहित (स्वस्तये) कल्याण के लिये (आरुहेम) अच्छे प्रकार आरूढ़ रहें।

भावार्थ—शरीर एक ऐसा रथ है, जो जीवात्मा के लिये ब्रह्मज्ञान,भौतिक बल तथा हितकारी धनों की प्राप्तिका साधन है। इस रथ पर जीवात्मा की सवारी है, और प्राण इसकी रक्षा करते हैं, और यह रथ प्रति दिन प्रातः काल होते ही चलने लगता है। इस रथ पर हमें इस प्रकार से आरूढ रहना चाहिये। जिससे इस रथ को किसी प्रकार की हानि न पहुंचे,इसीमें हमारा कल्याण है।

प्राणों द्वारा कल्याण की प्राप्ति।

(२१) स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यपसु वृजने स्वर्वति। स्वस्ति नः पुत्र कृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन॥ ऋ० १०-६३-१५

शब्दार्थ—(मरुतः) हे प्राणो ! (पथ्यासु) राज मार्गों (धन्वसु) मरुस्थलो-जन रहित देशो, तथा (अपसु) जलमार्गों नदी समुद्रादि में (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण हो।

(स्वर्वति) सब आयुधों से युक्त (वृजने) सेनाओं में-युद्ध में हमारे लिये कल्याण हो (पुत्र कृथेषु-योनिषु) पुत्र उत्पन्न करने वाली योनियों में (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण हो (राये) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये (स्वस्ति दधातन) कल्याण धारण करो।

भावार्थ—प्राणों के बलवान बनाने तथा वश में करने से सब जगह और सब अवस्थाओं में कल्याण होगा।

मातृ-भूमि।

(२२) स्वस्ति रिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभिया वाम मेति। सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपाः॥ ऋ० १०-६३-१६

शब्दार्थ—(या) जो (श्रेष्ठा) श्रेष्ठ मातृभूमि (प्रपथे) अच्छे मार्गों से युक्त (रेक्णवति) धन धान्य से पूर्ण है और (वामम्) यज्ञादि सुकर्म करने वालों को (अभिसर्ति) सुगमता से प्राप्त होती है, वह सदा (स्वस्तिः इतद्धि) कल्याणकारिणी ही होती है (सा) वह (नः) हमारी (अमा) घर पर और (अरणे) विदेश में भी (नि-पातु) रक्षा करें। और (देवगोपाः) विद्वानों से रक्षित वह मातृभूमि (सु-आवेशा) अच्छे निवास स्थान वाली (भवतु) होवे।

भावार्थ—हमारी मातृभूमि में उत्तम राजमार्ग बने हों, धन धान्य से पूर्ण हो, लोग उसमें यज्ञादि सुकर्म करते हों, और विद्वानों से रक्षित हो, ऐसी मातृ-भूमि हमारी घर पर तथा विदेश में भी रक्षा करती है। उसमें बसना सब प्रकार से सुखदायी तथा कल्याणकारी होता है।

श्रेष्ठतम कर्मों के लिये ईश्वर का उपदेश।

(२३) ओं ईषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावती रनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत मा घशंसो ध्रुवा अस्मिन गोपतौ स्यात वह्वीर्यजमानस्य पशून पाहि ॥ यजु० १।१

शब्दार्थ—(सविता देवः) सब जगत् का उत्पादक तथा प्रेरक प्रभु (त्वा) तुमको (ईषे) अन्नादि इष्ट पदार्थों की प्राप्ति तथा (ऊर्ज्जे) बल की प्राप्ति के लिये (प्र-अर्पयतु) विशेष प्रकार से अर्पण करे। और (श्रेष्ठतमाय कर्मणे) श्रेष्ठतम कर्म-यज्ञ के लिये (प्रापयतु) तुम सबको प्रेरित करे। (वायवः स्थ) क्योंकि तुम सब गतिशील हो। (आप्यायध्वम्) तुम सब उन्नति करो। (प्रजावतीः) बच्चों वाली, (अनमीवाः) नीरोग, (अयक्ष्माः) राजयक्ष्मा रहित (अघ्न्याः) गौएं सम्पादन करो। (इन्द्राय भागं) इष्ट पदार्थों-अन्न धनादि में से राजा का भाग भी हो, (वः) तुम सब पर (स्तेनः) चोर और (अघ-शंसः) पापी (मा ईशत) शासन न करे। किन्तु (अस्मिन गोपतौ) इस गौ वा भूमि के पालक राजा के शासन में (बह्वीः) बहुत संख्या में (ध्रुवाः) स्थिर (स्यात्) हो जाओ। और हे राजा तू भी (यजमानस्य) यज्ञ का कर्त्ता-श्रेष्ठ पुरुषों के (पशून्) गौ आदि पशुओं तथा उनके पुत्र पौत्रादिकों की (पाहि) रक्षा कर।

भावार्थ—ईश्वर मनुष्यों को उपदेश करता है कि, हे मनुष्यो! तुम में काम करने की शक्ति है, इसलिये तुम कभी भी सुस्त न

रह कर सदा श्रेष्ठतम कर्मों-यज्ञों के द्वारा अन्नादि उत्तम भोग्य पदार्थ तथा बल प्राप्त किया करो और खूब बढ़ो, और फलो फूलो। तुम्हारे घरों में उत्तम दूध देने वाली नीरोग गौवें भी हों। तुम जो ऐश्वर्य प्राप्त करो उसमें से राजा का भाग अवश्य निकालो। राजा भी तुम्हारा धर्मात्मा और प्रजा पालक हो, चोर* और पापी नहो। ऐसे राजाके राज्यमें ही प्रजाकी संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती है, और राजा भी उसकी अच्छे प्रकार से रक्षा करता है।

भद्रकर्म करने वालों की देवों द्वारा रक्षा।

(२४) ओं आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्न प्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे॥ य० २५।१४

शब्दार्थ—(नः) हमको (उद्भिदः) नाना उत्तम फलों को उत्पन्न करने वाले (भद्रः क्रतवः) यज्ञादि भद्र कर्म (अदब्धासः) निर्विघ्न (अपरीतासः) सर्वोत्तम प्रकार से (विश्वतः) सब ओरसे (आ, यन्तु) प्राप्त हों। (देवाः) विद्वान् लोग वा संसार के दिव्य पदार्थ (नः) हमारी (यथा) जिस प्रकार से (सदम्-इत) सदा ही (वृधे) वृद्धि के लिये (प्रसन) हों, उसी प्रकार से (दिवे-दिवे) प्रति दिन (नः) हमारी (अप्रायुवः) अप्रमाद होकर (रक्षितारः) रक्षा करने वाले हों।

---

*राज्य का कोष वास्तवमें प्रजा का माल है। जो राजा अपने राज-कार्य के अतिरिक्त उसमें से अधिक धन अपने निज के भोग विलास में खर्च करता है वह प्रजा का चोर और पापी हैं।

भावार्थ—उत्तम फल प्राप्त करना चाहते हो तो सदा यज्ञादि उत्तम कर्मों में तत्पर रहो। तभी विद्वान् लोग तथा संसार के भौतिक देव अग्नि, वायु आदि भी सदा तुम्हारी वृद्धि तथा रक्षा का हेतु बनेंगे।

देवों की मित्रता।

(२५) ओं देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानांꣳ रातिरभि नो निवर्त्तताम्। देवानाꣳसख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जोवसे॥ यजु० २५।१५

शब्दार्थ—(ऋजूयतां) सरल स्वभाव वाले (देवानाम्) विद्वानों की (भद्रा) कल्याण करने वाली (सु-मति) उत्तम बुद्धि और (देवानां-रातिः) और देवताओं की दान-वृत्ति (नः) हमें (अभिनिवर्तताम्) सब ओरसे प्राप्त हो। (वयं) हम (देवानाम् सख्यम्) विद्वानों वा भौतिक दिव्य पदार्थों की मित्रता को (उपसेदिमा) प्राप्त हों। (देवाः) विद्वान् लोग वा भौतिक दिव्य पदार्थ (नः आयुः) हमारी आयु को (जीवसे) जीने के लिये (प्रतिरन्तु) बढ़ावें।

भावार्थ—यदि दीर्घ जीवी बनना है, तो विद्वानों से सुमति और दान शीलता प्राप्त करो। और सूर्य, अग्नि, वायु आदि भौतिक देवताओं के साथ मित्रता प्राप्त करो।

कल्याण के लिये परमेश्वर को पुकारो।

(२६) ओं तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥ यजु० २५।१८

शब्दार्थ—(वयम्) हम लोग (जगतः-तस्थुषः पतिम्) चर और अचर के स्वामी (धियं-जिन्वं) बुद्धि प्रदाता (तम् ईशानं) उस ईश को (अव से) अपनी रक्षा के लिये (हूमहे) पुकारते हैं, जिससे (पूषा) सबका पोषक (रक्षिता) सबका रक्षक (पायुः) विघ्न निवारक (अ-दब्धः) किसी से भी न पराजित होने वाला प्रभु (स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये (वेदसाम्) धनैश्वर्यों और ज्ञानों की (वृधे) वृद्धि करने वाला (असत्) होवे।

भावार्थ—परमेश्वर ही चराचर का स्वामी और बुद्धि का दाता है। वह संसार का रक्षक और पोषक है, और किसी से भी पराजित नहीं हो सकता, इसलिये हे मनुष्यो! तुम सदा अपने धन तथा ज्ञान की वृद्धि और कल्याण के लिये उसी प्रभु को पुकारा करो, और किसी को नहीं।

(२७) ओं स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥ यजु० २५।१६

शब्दार्थ—(वृद्धश्रवाः) बहुत कीर्ति वाले (इन्द्रः) ईश्वर (नः) हमें (स्वस्ति-दधातु) सुख प्रदान करे। (पूषा) सबका पालन पोषन करने वाला (विश्व वेदाः) विश्व का ज्ञाता-सर्वज्ञ ईश्वर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति-दधातु) कल्याणकारी हो। (तार्क्ष्यः) तेजस्वी (अरिष्टनेमिः) दुःखों के हरने वाला प्रभु (नः) हमारा (स्वस्ति दधातु) कल्याण करे। और (बृहस्पतिः) बड़े २ ब्राह्मणों का स्वामी वा पालक वा ज्ञानी ईश्वर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति-दधातु) कल्याण को घर २ स्थापन करे।

भावार्थ— वह प्रभु बहुत कीर्ति वाला है, सर्वज्ञ है, सबका पोषक, तेजस्वी, दुखहर्त्ता और सर्व सृष्टि का स्वामी है। हमें उसी से कल्याण की याचना करनी चाहिये।

भद्र की कामना।

(२८) भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ᳪ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ यजु० २५।२१

शब्दार्थ—(देवाः) हे देवो-विद्वान लोगो ! (कर्णेभिः) कानों से (भद्रं शृणुयाम) हम सदा भद्र-हितकारी वचनों को ही सुनें। (यजत्राः) यजनीय-पूजनीय-सत्सङ्ग के योग्य विद्वानों हम सदा (अक्षभि) आंखों से (भद्रं) कल्याण कारी पदार्थ ही (पश्येम) देखें। और (स्थिरैः) स्थिर-दृढ (अंगैः) अंगों और (तनूभि) शरीरों सहित (तुष्टुवांसः) आप भक्ति करते हुए हम लोग (देवहितं) विद्वानों द्वारा निश्चित की हुई (यत) जो (आयु) शत वर्ष की आयु की अवधि है उस (वि-अशेमहि) विशेष-ब्रह्मचर्यादि उपायों से प्राप्त करें।

भावार्थ—हम कानों से भद्र ही सुनें, और आंखों से भी भद्र ही देखें, और पूर्ण स्वास्थ्य तथा बल को प्राप्त करते हुए ईश्वर की भक्ति करें और १०८ वर्ष की पूर्ण आयु को प्राप्त हों।

ब्रह्माण्ड रूपी यज्ञ का होता।

(२९) ओं अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्य दातये नि होता सत्सि बर्हिषि। साम० १।१।१

शब्दार्थ—(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप परमात्मन ! (वीतये) आप सर्व व्यापक तथा गति देने वाले हैं । (हव्य दातये)अन्नादि पदार्थों के दाता भी आप ही हैं । (गृणान) आप ही स्तुति प्रशंसा के योग्य हैं । (आ-याहि) आप आइये-प्राप्त हूजिये । आप (बर्हिषि) ब्रह्माण्ड रूपी यज्ञ के (होता) होता बन कर (नि-सत्सि) स्थित हैं ।

भावार्थ—वह प्रभु प्रकाश स्वरूप है । सर्व व्यापक होने से अणु प्रमाणुओं की गति का कारण है । समस्त भोगों के दाता हैं । वही अन्तरिक्ष के आसन पर होता बन कर बैठे हुए आहुतियां दे रहे हैं और संसार यज्ञ को चला रहे हैं ।

समस्त यज्ञों का होता अग्नि ।

(३०) ओं त्वमग्ने यज्ञाना ७ं होता विश्वेषां ७ं हितः । देवे भिर्मानुषे जने ॥ साम० १ । १ । २

शब्दार्थ—(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप परमात्मन (त्वम) आप (विश्वेषाम-यज्ञानाम होता) समस्त यज्ञोंके होता-हवि देने वाले हैं । (देवेभिः) विद्वानों वा अग्नि, वायु आदि देवों द्वारा (मानुषे जने) मनन शील पुरुषों में (हितः) हित को धारण करते हैं ।

भावार्थ—संसार में जितने यज्ञ होरहे हैं, उन सब के वास्तविक होता भगवान् ही हैं । मनुष्य जो छोटे २ यज्ञ करते हैं, उन के लिये समस्त द्रव्य पदार्थ भी भगवान् ही ने प्रदान किये हैं, इस लिये वास्तविक होता वही हैं । वह उन समस्त यज्ञों को

विद्वानों तथा भौतिक देवताओं द्वारा, मनुष्यों के हित के लिये ही कर रहे हैं।

पदार्थों से बल की प्राप्ति।

(३१) ओं ये त्रिषप्ताः परि यन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः। वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥ अथर्व० । १।१।१

शब्दार्थ—(ये) जो (त्रिषप्ता) तीन गुण सात पदार्थ (विश्वा-रूपाणी) सब रूपों को (बिभ्रतः) धारण करते हुए (परियन्ति) गति करते हैं। (वाचः पति) वाणी का स्वामी परमात्मा वा विद्वान गुरु (तेषां बला) उन के बलों को (अद्य) आज (मे-तन्वाः) मेरे शरीर में (दधातु) धारण करावे।

भावार्थ—प्रकृति का बना हुआ यह संसार अनेक रूप वाला है। इन समस्त रूपों के मूल में ७×३ = २१ पदार्थ हैं। अर्थात १–पृथ्वी, २–आपु, ३–तेज,४–वायु,५–आकाश,६–तन्मात्रा और ७–अहंकार यह सात फिर प्रत्येक की सत, रज, तम तीन अवस्थायें, इस प्रकार यह २१ पदार्थ बनते हैं । सारे रूपों में यही २१ पदार्थ व्यापक हैं। हमारा शरीर भी इन ही तत्वों से मिलकर बना है। इसलिये वाणी के स्वामी प्रभु से प्रार्थना की गई है, कि हे, प्रभु हमारे शरीर में इन २१ तत्वों के बलों को धारण कीजिये वा इनके बलों को अपने शरीर में धारण करने की विद्या व्याख्याता गुरु आज ही हमें पढ़ावें, जिससे हम नीरोग तथा बलवान बने रहें, और पूर्ण आयु को प्राप्त हों।

३-शान्ति प्रकरणम्

शान्ति का अर्थ है मनकी स्थिरता, चंचलता, का अभाव, क्रूरता का नाश, विकार वश न होना, चित्त की एकाग्रता, मनकी समता, तृप्ति समाधान सुरक्षिता इत्यादि। इन मन्त्रों में शान्ति की कामना तथा शान्ति प्राप्त करने के उपाय बतलाये गये हैं। किन्तु इनसे तभी लाभ हो सकता है, जब कि इनके अर्थों पर विचार किया जाये, तथा उसके अनुकूल ही जीवन को ढालने का प्रयत्न किया जाय।

शान्ति की याचना

१—शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रा वरुणा रात हव्या। शमिन्द्रा सोमा सुविताय शंयोः शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ॥ ऋ० । ३५ । १

शब्दार्थ—(इन्द्र अग्नि) विद्युत* तथा अग्नि (अवोभिः) रक्षा के साधनों द्वारा (नः) हमारे लिये (शम्) शांति दायक (भवताम्) होवें। (रात-हव्या) ग्रहण करने योग्य अन्नादि पदार्थों के दाता (इन्द्रा—वरुणा) आकाश में चमकने वाली विजली या सूर्य तथा वर्षा का जल (नः) हमारे लिये (शम्) शान्ति देने वाले हों। (इन्द्रा-सोमा) राजा+ तथा राज मन्त्री (सूर्य और चन्द्रमा)

---

*अशनिरिन्द्रः। कौ० ६-६

+क्षत्रं वा इन्द्रः। कौ० १२। ८॥

(सुविताय) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (नः) हमें (शम्) शान्ति प्रदान करें। (इन्द्रा-पूषणा) तेजस्वी सेनापति* तथा प्रजा का पालक राजा (वाज सातौ) युद्ध में वा अन्न लाभ विषय में (शं) सुखदायक हों।

भावार्थ—संसार के समस्त तेजस्वी पदार्थों का नाम इन्द्र है। इसलिये इन्द्र के अनेक अर्थ हैं। यहां दो दो पदार्थों का इकट्ठा वर्णन किया गया है। और हमें बतलाया गया है कि हमें किनर वस्तुओं से शांति प्राप्त करनी चाहिये। देखिये, बिजली तथा अग्नि द्वारा चलने वाले अनेक शस्त्र हमारे पास (रक्षार्थ होने चाहिये। खूब बिजली वा सूर्य चमके, तथा जल बरसे और पुष्कल अन्न पैदा हों। प्रतापी राजा तथा शांन्ति स्वभाव वाले विचारशील मन्त्री हों। सेनापती युद्ध द्वारा प्रजा की रक्षा करे, राजा सब प्रकार से प्रजा का पालन पोषण करें।

घमंड का त्याग

२–शन्नो भगः शमु नः शँसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः शँ नः सत्यस्य सुयमस्य शं नो अर्य्यमा पुरजातो अस्तु॥ ऋ० ७। ३५। २॥

शब्दार्थ—(नः) हमारे लिये (भगः) भाग्योदय (शम्) शांति देने वाला हो, (उ) और (नः) हमारे लिये (शंसः) प्रशंसा (शम् सन्तु) शांति के लिये ही हो, (पुरन्धिः) बहुत बुद्धि (शं नः) हमें

---

* सेनेन्द्रस्य पत्नी। गोपथ।

शांति देने वाली हो, (उ) और (रायः) धन (शम् संतु) हमारे लिये शांति देने वाला हो, (सु-यमस्य) अच्छी तरह नियम में रखने वाले की तथा (सतस्य, सत्य की (शंसः) महिमा (नः शम्) हमें शांति दायक हों। (पुरः जात) मनुष्यों में प्रसिद्ध वा ब्राह्मण्ड में प्रसिद्ध (अर्यमा) न्यायाधीश (नः) हमें (शं संतु) शांति का देने वाला हो।

भावार्थ—सौभाग्य प्रशंसा अधिक बुद्धि और धनादि पदार्थ यद्यपि अच्छी और सुख दायक वस्तु हैं। पर यदि मनुष्य इन बातों को प्राप्त करके घमंडी बन जाये तो यह अशांति का कारण बन सकती है, कि हे प्रभुः यह समस्त पदार्थ हमें शांति के प्रदान करने वाले हों। यदि हम उसी नियन्ता के नियमों तथा सत्य की महिमा को समझ लें, तो हमारा सब घमंड दूर होकर हमें शांति मिल सकती है। न्याय कारी प्रभु के न्याय से डरकर भी हम सुख प्राप्त कर सकते हैं।

धारक, पोषक प्रभु तथा उनकी विभूति

३—शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु, शं न उरूची भवतु स्वधाभिः। शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सहवानि सन्तु॥ ऋ० ७।३५।३॥

शब्दार्थ—(धाता) जगत का पालक (नः) हमें (शं) शान्ति प्रदान करें। (उ) और (धर्त्ता) विश्व को धारण करने वाला प्रभु (नः) हमें (शं अस्तु) शान्ति देने वाला हो, (उरूची) पृथिवी

(स्वधाभिः) अन्न जलादि से (शं) शान्ति दायक (भवन्तु) हो। (वृहती रोदसी) प्रकाश से भरा हुआ विशाल आकाश (शं) शान्ति दायक हो। [अद्रिः] मेघ और पर्वत (नः) हमें (शं) सुख दें। (देवानां सु-हवानि) विद्वानों के पवित्र आह्वान (नः) हमारे लिये (शं सन्तु) सुख प्रद होवें।

भावार्थः—वह धारक और पोषक हमें शान्ति प्रदान करें। पृथिवी तथा प्रकाश से भरा हुवा विशाल आकाश हमें सुख प्रद हो मेघों से हमें शान्ति प्राप्त हो। विद्वान हमें सुख और शांति का उपदेश करें।

४—शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शन्नो मित्रावरुणा-वश्विना शम्। शन्नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शन्न इषिरो अभिवातु वातः ॥ऋ० ७-३५-४ ॥

शब्दार्थ—(ज्योतिः अनीकः अग्निः) ज्योति की किरणें ही जिसकी सेना हैं ऐसा अग्नि वा सूर्य (नः शं अस्तु) हमारे लिये शान्ति दायक हो [मित्र] वायु (वरुण) जल [नः शम्] हमें सुख दायक हो (अश्विना+) दिन रात (नः) हमारे लिये (शं) कल्याणकारी हों (सुकृतां) पुण्यात्माओं के (सुकृतानि) शुभ कर्म (नः) हमें (शं) सुख देवें। (इषिरः) वेगवान (वातः) वायु (नः) हमारे लिये [शं] सुख दायक होकर (अभिवातु) सब ओर बहें।

+ अहो रात्रौ-निरुक्त

भावार्थ—सूर्य, वायु, जल दिन रात तथा नेक कर्म यह सब पदार्थ शान्ति देवें।

तीनों लोकों का स्वामि तथा विजेता।

५—शन्नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु। शन्न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शन्नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः॥ ऋ० ७।३५।५

शब्दार्थ— [पूर्व हूतौ] पूर्व काल से ही जिन की प्रशंसा होती रही है ऐसे (द्यावा पृथिवी) द्यौ लोक तथा पृथिवी लोक (नः) हम लोगों के लिये (शम्) शान्ति प्रदान करें। (दृशये) देखने के लिये (अन्तरिक्ष) अन्तरिक्ष (नः) हमें [शम्] सुखदायी [अस्तु] हो। (वनिनः ओषधिः) बन के साथ सम्बन्ध रखने वाली अर्थात जङ्गली ओषधियां (नः) हमारे लिये [शं) शान्ति प्रद [भवन्तु] हों। [रजसः पतिः] लोक लोकान्तरों का स्वामी [जिष्णुः] विजेता ईश्वर [नः] हमें [शम्] शान्ति देवें।

भावार्थ—द्यौ लोक, पृथिवी लोक, अन्तरिक्ष लोक, सब प्रकार की ओषधियां ईश्वर की कृपा से हमें शान्ति प्रदान करें।

शान्ति की कामना।

६—शन्न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु, शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः। शनो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शंनस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु॥ ऋ० ७।३५।६

शब्दार्थ—[वसुभिः] पृथिवी आदि ग्रहों उपग्रहों सहित [देवः इन्द्रः] तेजस्वी सूर्य [नः] हमारे लिये [शं] शान्ति देने वाला (अस्तु) होवे। [आदित्येभिः] सूर्य की किरणों के सहित [सु-शंसः] प्रशंसा योग्य (वरुणः) जल समुदाय-वर्षा (शम्) सुखदायी होवे। (रुद्रेभिः) सेना सहित (जलाषः) सन्ताप का नाशक (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाला राजा वा सेनापति (वः) हमें (शम्) शान्ति देवे। (ग्नाभिः त्वष्टा) वाणियों सहित विवेचक विद्वान् (इद) इस संसार में (नः) हमारे (शं) शान्ति दायक वचन (श्रृणोतु) श्रवण करें।

भावार्थ—सूर्य तथा पृथिवी आदि वसु हमें शान्ति प्रदान करें। समय समय पर यथा आवश्यक धूप तथा वर्षा हमें सुख प्रदान करे। राजा वा सेनापति अपनी सेना की सहायता से देश में शांति स्थापन करे, तथा शत्रुओं से देश की रक्षा करे। विद्वान् लोगों से हम लोग सदा शांति दायक वचन बोला करें।

यज्ञ, सुख और शांति का साधन है

७—शंनः सोमो भवतु ब्रह्म शंनः शंनो ग्रावणः शमु सन्तु यज्ञाः। शंनः स्वरूणां मितयो भवन्तु शंनः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः॥ ऋ० ७।३५।७॥

शब्दार्थ—(सोमः) सोमरस (नः) हमारे मनको (शं) शान्ति देने वाला (भवन्तु) होवे। (ब्रह्म) वेद मन्त्र (नः) हमें (शं) शान्ति प्रदान करें। (ग्रावाणः) सोमवल्ली को जिस पत्थर पर पीसा जाता

है। वह पत्थर (नः) हमारे लिये (शं) सुख का कारण हो। (उ) और (यज्ञाः) यज्ञ (नः) हमारे लिये (शम सन्तु) सुख कारक हों। (स्वरूणां मितयः) यज्ञ शाला के स्तम्भ (नः) हमारे लिये (शम्) सुख स्वरूप (भवन्तु) हों (प्रस्वः) उत्पन्न होने वाली औषधियें (नः) हमारे लिये (शं) सुख रूप हों (३) और (वेदिः) यज्ञ वेदी (नः) हमारे लिये (शं) सुख देने वाली हो।

भावार्थ—यज्ञ के समय सोम वल्ली को सुन्दर शिला पर पीस कर रस निकाला जाता है, वेद मन्त्र पढ़े जाते हैं, बहुत से स्तम्भों पर सुन्दर यज्ञ शाला बनाई जाती है, वेदि पर अग्नि प्रज्वलित करके उसमें अनेक प्रकार की औषधियां डाली जाती हैं। यह सारी बातें सुख और शान्ति की साधक हैं : सर्व पदार्थ सुख दायक हैं।

८—शंनः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शन्नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु शंनः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शंनः सिन्धवः शमु सन्त्वापः॥

शब्दार्थ—(उरु चक्षा) अत्यन्त तेज युक्त (सूर्यः) सूर्य (नः) हमारे लिये (शं) शान्ति दायक होकर (उत्–एतु) उदय हो। (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) दिशाएं (नः) हमारे लिये (शं) शांति युक्त (भवन्तु) हों। (ध्रुवयः वर्वताः) स्थिर पर्वत (नः) हमारे लिये (शम् भवन्तु) शांति दायक हों। (सिन्धवः) समुद्र वा नदियों के प्रवाह (नः) हमें (शं) सुख देवें। (३) और (आपः) जल (शम्-सन्तु) शान्ति दायक हों। (भावार्थ) भगवान की सारी रचना हमें शान्ति तथा सुख देने वाली है।

अखण्ड व्रत

९—शंनो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शंनो भवन्तु मरुतः स्वर्काः शंनोविष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शंनो भवित्रं शम्वस्तु वायुः॥

शब्दार्थ—(अदितिः) अदिति (व्रतेभिः) व्रतों द्वारा (नः) हमारे लिये (शं) कल्याण कारी (भवन्तु) हो) (स्वर्काः) उत्तम विचार वाले (मरुतः) मित भाषी विद्वान (नः) हमारे लिये (शम् भवन्तु) शान्ति दायक हों। (विष्णुः) व्यापक जगदीश्वर (नः) हमें (शम) शांति प्रदान करे। (पूषा) सर्व पोषक प्रभु वा राजा (नः) हमारे लिये (शम अस्तु) शांति दायक ही हो। (भवित्रम्) भवतव्यता (नः) हमें (शम्) शांति दायक हो। (वायु शम उ अस्तु) और वायु हमें शांति देने वाली हो।

भावार्थ—हमारे व्रत अखण्डित होने चाहियें, उत्तम विचार शील मित भाषी विद्वान हमें उपदेशों द्वारा शान्ति प्राप्त करायें, सर्व व्यापक तथा सर्व का पोषक भगवान भी हमारे मनको शांत बनाये, आगे क्या होगा ऐसा रात दिन विचार करते हुए मनको अशांत रखना भी हमारे लिये योग्य नहीं, वायु भी हमें सुख देने वाली हो।

सूर्य के उपकार

१०-शंनो देवा सविता त्रायमाणःशंनो भवन्तूषसो विभातीः। शंनोपर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शंनः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः।

शब्दार्थ—(देव: सविता) प्रकाश मान सूर्य वा जगत के उत्पादक तथा प्रेरक प्रभु (जायमान:) रक्षा करता हुवा (न:) हमारे लिये (शम्) सुख दायक हो (विभाती उपस:) विशेष कांतिवान उषाएं-प्रभात वेलाएं (न: शम् भवन्तु) हमारे लिये शांति दायक हों। (पर्जन्य:) मेघ (न: हमारे लिये तथा (प्रजाभ्य:) समस्त प्रजा के लिये (शम् भवन्तु) कल्याण कारी हों। (क्षेत्रस्य पति:) खेतों स्वामी किसान लोग वा संसार के स्वामी ईश्वर वा शरीर का स्वामी जीवात्मा. (न:) हमारे लिये [शंभु] कल्याण करने वाला तथा (शम) शांति देने वाला हो ।

भावार्थ—प्रात: वेला सूर्य के प्रकाश का सेवन करना स्वास्थ्य के लिये बहुत लाभ दायक है। बादल समय समय पर आवश्यकतानुसार जल बरसा कर प्रजा का कल्याण करे। किसान लोग अपने खेतों को अच्छे प्रकार जोतें, बोवें, खूब अन्न उत्पन्न होकर प्रजा को सुख तथा शान्ति प्राप्त हो।

विद्याप्रचार

११—शँनो देवा विश्व देवा भवन्तु शं सरस्वती सहधीभिरस्तु। शम भिषाच: शम्नु रातिषाच: शँनो दिव्या: पार्थिवा: शन्नो अप्या:। ऋग० ७।३५।७–११

शब्दार्थ—(विश्व देवा:) समस्त विद्वान् वा दिव्य गुण युक्त पदार्थ (देवा:) ज्ञान वा ऐश्वर्य के देने वाले होकर (न:) हमारे लिये (शम् भवन्तु) शान्ति दायक हों। (सरस्वती) विद्या देवी

(धी भिः सह) उत्तम बुद्धियों के साथ (नः) हमारे लिये (शम् अस्तु) शान्ति दायक हो। (अभिषाचः) आत्म दर्शी योगी (शम्) कल्याण कारी हों। (दिव्याः पार्थिवाः) दिव्य गुण युक्त स्वर्णादि पृथिवीस्थ पदार्थ (नः) हमारे लिये (शं) सुखदायी हो। (अप्याः) जल में उत्पन्न होने वाले मूंगा मोती आदि पदार्थ (नः) हमारे लिये (शं) सुख प्रदान करें।

भावार्थ—समस्त विद्वान विद्या का प्रचार करके प्रजा के सुख तथा शान्ति का कारण बन सकते हैं। विद्या से, सु-बुद्धि की सहायता से ही सुख प्राप्त किया जा सकता है। निर्बुद्धि वा उल्टी बुद्धि वाले स्वार्थी मनुष्य तो विद्या से भी उपद्रव ही खड़ा करते रहते हैं तथा प्रजा को हानि पहुंचाने के लिये ही विद्या का दुर उपयोग करते हैं। आत्म ज्ञानी योगी प्रजा में आत्मज्ञान का प्रचार करने, तथा दान ग्रहण करने वाले मनुष्य उस दान को प्रजा के कल्याण के लिये विद्यालय आदि खोलने में खर्च करनेसे कल्याण का हेतु बन सकते हैं। पृथिवी पर तथा जल में उत्पन्न होने वाले अनेक दिव्य पदार्थों का उपयोग भी सुख तथा शान्ति देने वाला विद्या प्रचार आदि कार्यों में ही होना चाहिये।

सद्व्यवहार

१२—शंनः सत्यस्य पतयो भवन्तु शंनो अर्वन्तुः शमु संतु गावः। शंन ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शंनो भवन्तु पितरो हवेषु॥ ऋ० ६। ३५। १२

शब्दार्थ—(सत्यस्य पति) सत्य के पालक (नः) हमारे लिये (शं भवन्तु) शान्ति दायक हो। (अर्वन्तः नः शम्) घोड़े हमें सुख देवें (उ) और (गावः शं सन्तु) गौएं हमारे लिये सुखकारी हों (ऋभवः) श्रेष्ठ बुद्धि वाले (सुकृतः) शुभ कर्म करने वाले (सुहस्ताः) सिद्धहस्त कारीगर (नः) हमारे लिये (शं। सुखदायी हों। (हवेषु) लेन देन व्यापार आदि में (पितरः) रक्षक लोग अपनी रक्षा द्वारा (नः) हमारे लिये (शं भवन्तु। सुखदायी हों।

भावार्थ—सुख तथा शान्ति के लिये मनुष्यों को सदा सद्-व्यवहार करना चाहिये। घोड़े गौ आदि पशुओं का पालन पोषन करने से अनेक प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं। बुद्धिमान तथा सुकर्मी कारीगर लोग प्रजा के लिये वस्त्रादि अनेक प्रकार की सुखदायी वस्तुएं बनाया करें। प्रजा सब प्रकार का लेन-देन व्यापार करें। तथा राजा आदि रक्षक लोग उस व्यापार आदि की अच्छे प्रकार रक्षा करें। तभी राष्ट्र में शान्ति रह सकती है।

अजन्मा प्रभु

१३—शंनो अज एक पाद्दे देव अस्तु शंनो ऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः। शंनो अपां नपात्पेरुरस्तु शंनः पृश्निर्भवतु देव गोपाः॥ ऋ० ६।३५।१३।

शब्दार्थ—(एक पाद्) जिसके एक पाद में समस्त जगत विधमान हैं (अजः) ऐसा अजन्मा (देवः) सर्व प्रकाशक प्रभु (नः) हमारे लिये (शम्) शान्ति देने वाला (अस्तु) हो। (बुध्न्यः)

अन्तरिक्ष में होने वाला (अहि:) मेघ (न:) हमें (शम्) शांति देवे। (समुद्रः शम) समुद्र हमें शान्ति देवे। (अपां) जलों में (नपात्) नौका (पेरु:) पार करने वाली होकर (न:) हमारे लिये (शं) सुख रूप (अस्तु) हो। (देव गोपा:) हमको (शम् भवन्तु) शान्ति दायक हो।

भावार्थ—हमें सदा परमात्मा से सुख और शान्ति के लिये प्रार्थना करनी चाहिये, क्योंकि उसी प्रभु ने हमारे सुख के लिये अन्तरिक्ष में मेघ तथा पृथिवी पर समुद्र उत्पन्न किया है। समुद्र को पार करनेके लिये हमें उत्तम नौकाएं बनानी चाहियें। आकाश में सूर्य चन्द्रमा आदि अनेक देव-प्रकाशित पदार्थ हमारी ही रक्षा तथा सुख के लिये बनाये गये हैं।

विश्व का राजा इन्द्र

१४–इन्द्रो विश्वस्य राजति। शंनो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥ यजु० ३६। ८

शब्दार्थ –(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान परमेश्वर (विश्वस्यराजति) विश्व का राजा है, वा विश्व के बीच प्रकाशमान है। उसी की कृपा से (न:) हमारे (द्विपदे) दो पांव वाले मनुष्यादि तथा (चतुष्पदे) चौपाये अश्वगौ आदि के लिये (शम् अस्तु) सुख शान्ति होवे।

भावार्थ—दुपायों तथा चौपायों की सुख शान्ति के लिये सदा परमात्मा से ही प्रार्थना करनी चाहिये।

सुख शांति के लिये प्रार्थना

१५—शन्नो वातः पवता ᳪ शन्नस्तपतु सूर्यः। शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु ॥ यजु० २६ । १० ॥

शब्दार्थ—(वातः) पवन (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (पवताम्) चले। (सूर्य) (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (तपतु) तपे। (कनिक्रयत्) गर्जता हुवा (देवः) दिव्य जल युक्त (पर्जन्यः) मेघ (नः) हमारे लिये (शम अभिवर्षतु) सुखदायी होकर सर्वत्र बरसे।

भावार्थ—पवन, सूर्य तथा मेघादि समस्त पदार्थ हमारे सुख के लिये ही प्रभु ने बनाये हैं।

दिन रात शान्ति

१६—अहानि शं भवन्तु नः श ᳪ रात्रीः प्रतिधीयताम्। शं न इन्द्राग्नी भवता मवोभिः शं न इन्द्रा वरुणा रात हव्या शं न इन्द्रा पूषणा वाजसातौ शमिन्द्रा सोमा सुविताय शंयो॥ यजु० ३६ । ११

शब्दार्थ—(नः) हमारे लिये (अहानि शं भवन्तु) दिन सुखकारी हों (रात्रीः) रातें (शम् उ प्रति(शान्ति के लिये ही (धीयताम्) हमको धारण करें। (नः) हमारे लिये (इन्द्र अग्नी) बिजली और अग्नी (अवोभिः) नाना रक्षा साधनों से (नः) हमें (शम्) शांति दायक (भवताम्) हों। (रात हव्या) अन्न के दाता (इन्द्र वरुणा) सूर्य और मेघ (नः शम्) हमें सुखकारी हों। (वाजसातौ) युद्धादि

में अन्नों के सेवनार्थ [इन्द्र] तेजस्वी सेनापति और [पूषणा] सेना का पालन पोषणार्थ अन्नादि का प्रवंध करने वाले लोग [नः शम] हमें शांति देवें। [इन्द्रा सोमा] राजा और मन्त्री [सु-इताय] अच्छे जीवन के लिये सुखकारी हों।

भावार्थ—शत्रुओं से अपनी रक्षा करने के लिये हमें बिजली तथा अग्नि द्वारा चलने वाले अनेक अस्त्र शस्त्र निर्माण करने चाहियें। समय समय पर सूर्य चमके तथा मेह बरसे जिससे पुष्कल अन्न उत्पन्न हों। युद्ध के समय रक्षा करने के लिये उत्तम सेनापति तथा होशियार रसद पहुंचाने वाले का प्रबन्ध हो। धर्मात्मा राजा बुद्धिमान मन्त्रियों की सहायता से शासन करता हो, जिससे हम सुख पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें। ऐसा प्रवंध होने पर ही हम दिन रात शांति पूर्वक रह सकते हैं, अन्यथा नहीं।

जल शांति का साधन हैं।

१७—शंनो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभि स्रवन्तु नः॥ यजु० ३६।१२॥

शब्दार्थ—(देवीः आपः) दिव्य गुण युक्त जल (नः) हमारे लिये (पीतये) पीने के लिये तथा (अभिष्टये) अभीष्ट कामों के लिये (शं भवन्तु) शान्ति दायक हो और (नः) हमारे लिये (शंयो) शन्ति (अभि स्रवन्तु) सब ओर से चुवाये।

भावार्थ—जल मन की वृतियों को शान्त करने का विशेष साधन है। पेय पदार्थों में जल ही मुख्य है। इसके अतिरिक्त

मार्जनादि और भी अनेक काम जल से सिद्ध होते हैं। अनेक प्रकार के रोग भी जल से नष्ट हो जाते हैं।

हर तरफ शांति का साम्राज्य।

१८—द्यौः शान्ति रन्तरिक्ष ७ँ शान्तिः पृथिवी शांतिरापः शान्तिरोषधयः शांतिः। वनस्पतयः शान्ति र्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व ७ँ शान्तिः शांतिरेव शांतिः सा मा शांतिरेधि ॥ यजु० ३६।१७॥

शब्दार्थ—(द्यौः) प्रकाशमान लोक (शान्तिः) शान्ति देने वाला हो। (अन्तरिक्ष) अन्तरिक्ष-लोक बीच का पोल-(शांतिः) शांति देने वाला हो। (पृथिवी शान्तिः) पृथिवी शान्ति दायक हो, (आपः शान्ति) जल शान्ति देवे। (ओषधयः शान्तिः) अन्नादि समस्त औषधियां शांति प्रदान करें (वनस्पतयः शान्तिः) वटादि वृक्ष शान्ति देवें। (विश्वे देवः शान्ति) समस्त विद्वान वा दिव्य गुण युक्त पदार्थ शान्ति दायक हो। (ब्रह्म शांतिः) परमेश्वर वा वेद ज्ञान शांन्ति प्रदान करे। (सर्वम्-शांतिः) सब पदार्थ शांति प्रदान करे। (शांतिः एव शांतिः) शांति भी शान्ति दायक हो। (सा शांतिः मा एधि) वह परम शांति मुझे प्राप्त हो।

भावार्थ—मनुष्य अपने मन के विकारों से ही अशांत रहता है। यदि यह विकार नष्ट हो जायें, तो उसे हर तरफ शांति ही का साम्राज्य दृष्टि पड़े।

सौ वर्ष तक स्वस्थ जीवन की कामना।

१९—तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीना स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ यजु० ३६।२४ ॥

शब्दार्थ—(तत) वह परमात्मा [चक्षुः] सर्व द्रष्टा है, (देव हितम्) धार्मिक विद्वानों का हितकारी है, (शुक्रं) शुद्ध स्वरूप तथा बल स्वरूप हैं, (पुरस्तात) सृष्टि के पहिले से ही [उत् चरत] उदित हुवा है। उसकी कृपा से (शतम शरदः) सौ वर्ष तक (पश्येम) हम देखें, [शतम् शरदः शृणुयाम) सौ वर्ष तक सुनते रहें, (शतम् शरदः प्रब्रवाम) सौ वर्ष तक बोलते रहें, [शतम् शरदः अदीनास्याम] सौ वर्ष तक दीनता को प्राप्त हों, (च) और (शतात शरदः भूयः) सौ वर्ष से अधिक इसी प्रकार जीवन धारण करें।

भावार्थ—परमात्मा की कृपा से हम दीर्घ आयु को प्राप्त करें और मरण पर्यन्त हमारे शरीर के अवयव और इन्द्रियां बलवान बने रहें। और हम कभी दीन भाव को प्राप्त न हों।

शिव सँकल्प।

२०—यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमँ ज्योतिशां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु॥

शब्दार्थ—[यत्] जो (दैवं) दिव्य गुण युक्त मन (जाग्रतः) जाग्रत अवस्था में (दूरं उत् एति) दूर २ जाता रहता है (उ) और तथा (एवं) इसी प्रकार से [तत्] वह मन (सुप्तस्य) सोये हुए मनुष्य का भी (एति) चलता रहता है। वही (दूरं-गमं) दूर २ जाने वाला मन (ज्योतिषां) इन्द्रियां रूपी ज्योतियों का (एकं ज्योतिः) एक मात्र प्रकाशित करने वाला ज्योति है। (तत) वह (मे मनः) मेरा मन शिव संकल्पम् (अस्तु) अच्छे संकल्पों वाला होवे।

भावार्थ—जो दिव्य शक्तियों वाला मन सोते और जागते दूर २ भटकता रहता है, और समस्त ज्ञानेन्द्रियां भी उसी से प्रकाशित होती हैं, वह मेरा मन शुभ विचारों वाला हो।

२१—येन कर्माण्यपसो मनीषिणो कृण्वन्ति विदथेषु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ॥ यजु० २४।२॥

शब्दार्थ—(येन) जिसके द्वारा (अपसः) कर्मनिष्ट (मनीषिणः) मननशील विद्वान [यज्ञे] अग्निहोत्रादि यज्ञों में और [धीराः] धीर पुरुष (विदथेषु) युद्धादि में (कर्माणि) इष्ट कर्मों को (कृण्वन्ति) करते हैं। तथा (यत्)जो (प्रजानां अन्तः) प्रजाओं के मध्य में (अपूर्वम् यक्षम्) अपूर्व पूजनीय शक्ति है। (तत्) वह (मे मनः) मेरा मन (शिवसंकल्पम्) शुद्ध विचारों वाला [अस्तु] हो॥

भावार्थ—मन हमारे अन्दर एक अपूर्व शक्ति है। इसके द्वारा ही धार्मिक तथा व्यवहारिक सब प्रकार के कर्म किये जाते हैं। वह हमारा मन सदा पवित्र विचारों वाला होना चाहिये।

२२—यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिन्तरमृतम् प्रजासु। यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ यजु० ३४।३॥

शब्दार्थ—(यत्) जो (प्रज्ञानम्) विज्ञान (धृतिः) धृति (धारण शक्ति स्मरण शक्ति) का साधन है, [यत्] जो (प्रजासु) सब प्राणियों में [अन्तः] अन्दर की (अमृत ज्योतिः) अमर ज्योति है, (यस्मान् ऋते) जिसके बिना (किंचन कर्म) कोई भी काम (न क्रियते) नहीं किया जाता, (तत् मे मनः) वह मेरा मन (शिव संकल्पम अस्तु) शुभ विचारों वाला हो।

भावार्थ—मन ही प्राणियों के अन्दर ज्ञान चेतन तथा धृति का साधन है। वह अमर ज्योति है। और उसके बिना कोई भी कार्य नहीं किया जा सकता। वह मन शुभ विचारों वाला होना चाहिये।

२३—येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ॥

शब्दार्थ—(येन अमृतेन) जिस अमृत रूप मन के द्वारा (इदम्) यह (भूतम्) भूत काल (भुवनम्) वर्तमान काल तथा (भविष्यत) भविष्यत काल के (सर्वम्) सब पदार्थ

(परि गृहीतम्) भली प्रकार ग्रहण किये जाते हैं, और (येन) जिसके द्वारा (सप्त होता यज्ञः) सात होताओं द्वारा चलाया जाने वाला जीवन यज्ञ (तायते) चलाया जाता है, (तत्) वह (मे मनः) मेरा मन (शिव संकल्पम् अस्तु) शिव संकल्प वाला होवे।

भावार्थ—मन द्वारा ही भूत वर्तमान और भविष्यत से सम्बन्ध रखने वाली समस्त बातें जानी जाती हैं। और मन ही, इस जीवन रूपी यज्ञ को, जिसके दो आंखें, दो कान, दो नासिकाएं और मुख, यह सात 'होता' हैं, चल रहा है। ऐसा मेरा मन सदा शुभ विचारों वाला होना चाहिये।

२४—यस्मिन्नृचः साम यजूᳬं षि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिंश्चित्तᳬं सर्व मोतं प्रजानां तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ॥ यजु० ३४।५॥

शब्दार्थ—(यस्मिन्) जिसमें (रथनाभौ इव पूराः) रथ के पहिये की नाभि के अरों के समान (ऋचः) ऋग्वेद (साम) साम वेद (यजूंषि) यजुर्वेद, (प्रतिष्ठिता) स्थित है। और (यस्मिन्) जिसमें (सर्वम् प्रजानाम्) सब प्राणियों का (चित्तं) चित्त-चेतन्यता (ओतम्) पिरोया हुवा है। (तत्) वह (में मनः) मेरा मन (शिव संकल्पम् अस्तु) शुभ विचारों वाला होवे।

भावार्थ—ज्ञान, कर्म और उपासना के भावों का केन्द्र मन ही है और सब जीवों में चेतनता का कारण भी मन ही है। अतः

हमारा मन पवित्र विचारों वाला होना चाहिये।

२५—सुषारथिर श्वानिव यन्मनुष्यान्ने नीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठँ तन्मे: मनः शिव संकल्प मस्तु॥ यजु० ३४। १-६॥

शब्दार्थ—(सू सारथिः इव) अच्छा, सारथि जिस प्रकार से (अभी शुभिः) वागों से (वाजिनः) वेगवान (अश्वान) घोड़ों के (ने नीयतें) चलाता है। उसी प्रकार से (यत्) जो मनुष्यान्)को चलता है बड़े मन (हृत्-प्रतिष्ठाम्) हृदय स्थानमें स्थित है। (अजिरम्) और जरा आदि अवस्थाओं से रहित है (जविष्ठं) बड़ा वेगवान है। (तत्) वह (मेमनः) मेरा मन (शिव संकल्पमस्तु) पवित्र विचारों वाला हो।

भावार्थ—मनुष्य का शरीर, रथ, इन्द्रियां, घोड़ों, और मन सारथी के समान है। यह मन हृदय में प्रतिष्ठित और बड़ा वेग वान है। यदि यह शुद्ध होगा तो मनुष्य को धर्म मार्ग पर ले जायेगा अन्यथा कुकर्मों में फंसायेगा।

सब के लिये सुख और शांति की प्रार्थन।

२६—सनः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते, शं राजन्नोषधीभ्यः॥ साम० उत्तरार्चिके प्रपा० १ मं १ का उत्तरार्ध।

शब्दार्थ—(राजन्) हे भगवान आप संसार के राजा हैं। स्व प्रकाश स्वरूप है, (सः) वह आप (नः) (गवे) गौ आदि दूध देने वाले पशुओं के लिये वा ज्ञानेन्द्रियों के लिये (शं)

शान्ति (पवस्व) प्रदान कीजिये । (जनाय) समस्त मनुष्यों के लिये (शं) शान्ति प्रदान कीजिये । (पूर्वते) घोड़े आदि बोझ ढोने वाले पशुओं वा कर्मेन्द्रियों के लिये) (शं) सुखप्रदान कीजिये । (ओषधिभ्य:) अन्नादि ओषधियों के लिये भी (शं) कल्याण हो ।

भावार्थ—परमात्मा की कृपा से समस्त गौ,घोड़े आदि पशुओं सब मनुष्यों तथा ओषधियों के लिये सुख तथा शान्ति प्राप्त हो जिस से सब खूब फूलें फलें और वृद्धि को प्राप्त हो ।

अयभ के लिये प्रार्थना ।

२७–अभयं नः करत्यन्तरिक्षभयँ द्यावा पृथ्वी उभे इमे । अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधराद भयँ नो अस्तु ॥ अथर्व १९. १५.३ ॥

शब्दार्थ—(नः) हमें (अन्तरिक्षम) अन्तरिक्ष (अभयम् करती) अभय करें, (द्यावा पृथिवी) द्यौ और पृथिवी (उभे इमे) यह दोनों लोक (अभय) अभय करें, (पश्चात् अभय) पीछे से अभय (पुरस्तात् अभय) आगे से अभय उत्तरात, ऊपर से तथा अधात (अधरात) नीचेसे (सब ओर से (नःअभयमं) हमे अभय प्राप्त हो ।

भावार्थ– हमें सब जगह निर्भय होकर विचरना चाहिये ।

मित्रता में निर्भयता।

२८—अभयं मित्रादभयं मित्रादभयँ ज्ञातादभयं पुरोयः।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥
अथर्व० १६। १५ १६॥

शब्दार्थ—(मित्रात अभयम) मित्र से भय न हो, (अमित्रात् अभयम्) अमित्र से भय न हो, (ज्ञातात् अभयम्) जाने हुए से भय न रहे, (यः पुरा) जो आगे आने वाला है—अज्ञात से (अभयं) भय न हो, (नक्तम् अभयम्)रात को भय न हो, (दिवा अभयम्) दिन में भय न हो, (सर्वाः आशाः) सारी दिशाएं (मम मित्रं भवन्तु) मेरी मित्र बन जावें।

भावार्थ—यदि मैं सब के साथ मित्र भाव से बतूंगा तो मुझे कहीं और किसी में भी भय न होगा।

हवन की सामग्रियां

१—डा० सत्य प्रकाश जी D. Sc. (Lecturer in Chemistry of Allahabad) लिखित अंग्रेजी पुस्तक अग्नि होत्र (Agnihotra) से उद्धृत।

यह सामिग्री उक्त डाक्टर साहिब को श्री० पं० विद्यानन्द जी काशी निवासी से प्राप्त हुई थीं।

लकड़िया समिधाएं १० सेर, पिघला हुवा शुद्ध घी २ सेर, जौ, (यव) तिल, चावल, मखाने ४-४ छटांक।

किशमिश, गोला (खोपड़ा) छुहारे, चिरोंजी, बादाम, चन्दन चूरा, देवदारु, दो दो छटांक।

अगर, पिस्ता, तगर, तुमुल, कपूर कचरी, गुग्गल, नागर मोथा, बाल छड़, नर कचूर, सुगन्ध बाला, तज, तेजपात, कुलेजन, तुमुल, चानो एक एक छटांक।

इलायची, जायफल, लोंग, आधी २ छटाक। चोना ४ छटांक।

नोट:—आज कल हवन सामग्री में तिल और जौ और चावल आदि का मिलाना प्राय: बन्द सा ही हो गया है पर वास्तव में यह चीजें बहुत उपयोगी हैं।

(२) ऋत्वानुकूल सामग्री।

(आर्य पर्वपद्धति से उद्धृत)

[क] वसन्त ऋतु

छरीला वा भूरि छरीला, तालीस पत्र, पत्रज, शीतल चीनी, अगर, इन्द्र जौ, जायफल, कमल गट्टा, मजीठ, वन कपूर, कपूर कचरी, दाल चीनी, चिरायता, खस, गोखरु बारह २ भाग।

लज्जावती, छुई मुई, शंख पुष्पी ६-६ भाग।

देवदारु-दयार, मुनका, गूलर की छाल, गिलोय, धूप सरल तीस तीस भाग।

केसर १ भाग। जावित्री २ भाग कपूर १५ भाग।

पुष्कर मूल (रेशेदार काले रङ्ग की कड़वी जड़-इसके बदले में कूट लिया जा सकता है) बारह भाग। तीनों चंदन ३६ भाग।

तेज पत्र (छाल और जड़) छाल और जड़ का स्वाद कुछ चरपरा, छाल का रंग विलायो लिये हुए श्वेत हरिद्वार और बदरी नाथ के निकट इसके वृक्ष होते हैं। (बारह २ भाग)

खांड वा बूरा ६० भाग, गो घृत ६० भाग।

नोट:—इस ऋतु में सुलभतानुसार आम वा (जंड) की समिधाओं का प्रयोग विशेषत: किया जाय।

(ख) ग्रीष्म ऋतु

मुरा (ताल पर्णी वा मुरामांसी) वाय विडंग, जरामांसी (बाल छड़) कपूर, नेत्र वाला, (नाली का शाक) इलायची बड़ी, उन्नाव, नागर मोथा, आमले, पीला चन्दन, (कलम्बक) छरीला, (भूरिछरील) निर्मली फल (इसमें पानी को स्वच्छ करने का गुण है) सतावर, (शतावरी) ख़स, गिलोय, धूप सरल (एक सुगन्धित काष्ठ पंजाब से प्राप्त) दाल चीनी, लवङ्ग, तगर, तालीस पत्र, पद्माख, (एक प्रकार का काष्ठ जिस का बड़ा वृक्ष हिमालय में होता है) दारू हल्दी, लाल चन्दन, मजीठ, शिलारस, (एक वृक्ष का पिलापी लिये हुए भूरा गोंद है, वृक्ष विही के सदृश होता है संस्कृत नाम सिल्हक, कपिज) बारह २ भाग।

चन्दन १४ भाग, केसर एक भाग। गुल सुर्ख ३२ भाग।

तूम्बर, चिरोंजी, सुपारी तीस २ भाग।

खांड वा बूरा ६० भाग, घृत ६० भाग।

(ग) वर्षा ऋतु

काली अगर, इन्द्र जौ, धूप सरल, तगर, तेज पत्र, कपूर, बेल, गिलोय तुलसी बीज व पत्ते, वाय विड़िंग, जायफल,

नाग केसर, चिरायता, मोचरस बारह २ भाग ।

गोला, देव दारू, गुगल, राल, जटा मांसी, (बालछड़) वच, चन्दन का बूरा, छुहारा, नीम के पत्ते तीस २ भाग।

सङ्खाहुली, छोटी इलायची छः २ भाग।

गो घृत ६० भाग, खांड वा बूरा ६० भाग।

(नोट) इस ऋतु में सुलभतानुसार ढाक की समिधाओं का योग विशेषतः किया जाय ॥

[घ] शरद ऋतु।

गुग्गल, जटामांसी, चन्दन, सफेद, चिरौंजी, गूलर की छाल वा सरसों श्वेत, कपूर कचरी तीस २ भाग।

पित्त पापड़ा, शहतरा (इसके वृक्ष लाल और नीले फूल के दो प्रकार के होते हैं, लाल फूल का अधिक गुण वाला है। संस्कृत पर्पट, अगर, चंदन सफेद, चन्दन, पीला, भारङ्गी, नाग केसर, इलायची बड़ी, इन्द्र जौ, गिलोय, दाल चीनी, असगन्ध, मोचरस, ताल मखाने, शीतल चीनी, धान की खील, जायफल, कपूर, पत्रज, चिरायता बारह २ भाग।

केसर एक भाग किशमिश ३५ भाग।

सह देवी (सह देई हिन्दी) तुलसी के समान पत्तों वाली एक घास है ६ भाग। खांड ६० भाग, गो घृत ६० भाग।

नोट—इस ऋतु में सुलभतानुसार ढाक की समिधाओं का प्रयोग विशेषतः किया जाये।

(ङ) हेमन्त ऋतु

भारंगी, कूट, कपूर, गिलोय, दालचीनी, सौफ़, मूसली काली, पटोल पत्र, दालचीनी, पुष्कर मूल, घोड़ा वच, गोखरू, बादाम, मुलहठी, जावित्री, पित्त पापरा, लालचन्दन, तालीस पत्र, बारह बारह भाग।

मुनका भाग २०, अखरोट की गिरी, कपूर कचरी भाग २४, कौंच के बोज भाग ६, काले तिल, गुगल, गोला, तुम्बुल, तीन भाग, मुश्कबाला रोसन भाग ६, खांड़ वा बूरा ६० भाग, गो घृत ६० भाग।

नोट—इस ऋतु में सुलभतानुसार आम्र वा खैर की समिधाओं का प्रयोग विशेषत: किया जाय।

(च) शिशिर ऋतु

अखरोट, चिरायता, बायबिड़ग कपूर, पद्माख, इलायची बड़ी, सुपारी, दारुहल्ली, मुलहटी, शतावर, काकड़ा सिंगी, मोचरस, गिलोय, चिरोंजी, तुलसी, तज बारह बारह भाग।

रेणुका (संभालू), शंखा पूष्पी, कौंच के बीज, भोजपत्र छः छः भाग।

छुहारे, काले तिल, चन्दन २४-२४ भाग !

जटामांसी, गुगुल, तुम्बुल (तुम्बर), राल, मुनक्का, ३० भाग घी ६० भाग, खांड़ वा बूरा ६० भाग।

नोट—इस ऋतु में सुलभतानुसार गूलर तथा बड़ की समिधाओं का प्रयोग बिशेषत: किया जाय।

सर्व ऋतु सामान्य हवन सामग्री

चूरा चन्दन सफेद २४ भाग, जायफल,नाग केसर, जावित्री, ७-७ भाग।

दालचीनी, कपूर कचरी, तालीस पत्र, अगर, तगर, आवला, पानडी, इन्द्र जौ, नागरमौथा लौंग, बड़ी इलायची १५-१५ भाग।

गोला, छुहारा, गुल सुर्ख, गुग्गुल, तुम्बुल, किशमिश, सुपारी नीम के पत्ते, वालछड़ ३०-३० भाग।

बूरा वा खांड़, घी ६०-६० भाग।

नोट—(१) ऊपर कोई विशेष तोल न लिखकर भाग इस लिये लिखे गये हैं कि यथेष्ट कम से कम और अधिक से अधिक तोल में सामग्री बनाई जा सके। जैसे यदि ऽ१। सामग्री बनानी हो तो १ भाग २ माशा का होगा।

(२) कपूर, घृत खांड, मेवे और पंचांग वाली औषधियां हवन के समय ही तुरन्त मिलानी चाहियें।

४ तपेदिक 'क्षयरोग' नाशक हवन सामग्री।

(डा० कुन्दन लाल M. D. D. A. L.M.R. S. A.)

मण्डूक पर्णी, ब्रह्मी, इन्द्रायण की जड, शतावरी, असगन्ध, विधारा, शावपर्णी, मकोय, अडूसा, गुलाब के फूल, तगर, रासना, वंश लोचन, क्षीर का कौली, जटा मासी, पण्डरी, गोखरू, पिस्ता, बादाम, मुनक्का, जायफल, लोंग, हर्र, बड़ी गुठली सहित, आमला, जीवती, पुनर्नवा, नगेन्द्र वामडी, चीड का बुरादा, खूवकलां, (सम भाग) गिलोय, गुग्गल (चार भाग)

केसर, शहद, काफूर, देशी शक्कर (दस भाग) घी इतना कि सामग्री खूब सन जावे जिसके लड्डू बन सकें। खुश्क से खांसी बढ़ने का भय है। साठी के चावलों की खीर पृथक् बनाई जावे।

(नोट) यज्ञ सूर्य उदय व अस्त दोनों समय करना चाहिये। शीतकाल में प्रातः के स्थान दो पहर को भी कर सकते हैं। चील अथवा बांस के जंगल में बैठ कर यज्ञ करना रोगी को विशेष हितकारी है। यज्ञ की अग्नि खूब प्रदीप्त होनी चाहिये। आम अथवा ढाक की सूखी समिधा होनी चाहिये। धुंवा विशेष न होना चाहिये। हवन समय रोगी उच्च स्वर से यज्ञ मन्त्र उच्चारण करें, चिकित्सा के साथ २ वस्ती कर्म तथा जलचिकित्सा रोग दूर करने में भी विशेष सहायक है।

निर्बल स्वस्थ मनुष्य, जिनको तपेदिक होने का भय हो, इस सामग्री से नित्य प्रति यज्ञ करके तपेदिक के भय से मुक्त हो सकते हैं।

तपेदिक नाशक हवन सामग्री।

(महता सीताराम दत्त, लाहौर)

रोगी के कमरे में निम्न लिखित सामग्री प्रति दिन दो वा तीन वार जलाओ ताकि घर और कमरे की वायु में इन औषधियों के परमाणु सम्मिलित होकर श्वास के साथ फेफड़ों में जाते रहें।

लोबान व बुरादा संदल पांच २ तोला, नीम के पत्ते, गिलोय के पत्ते, अडूसा के पत्ते घी प्रत्येक दस २ तोला, मुश्क काफूर ढाई तोला मिला कर तय्यार करलो और पीपल या बेर की लकड़ी जला कर उसमें धीरे २ आहुतियां डालो।